* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरुसेवा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
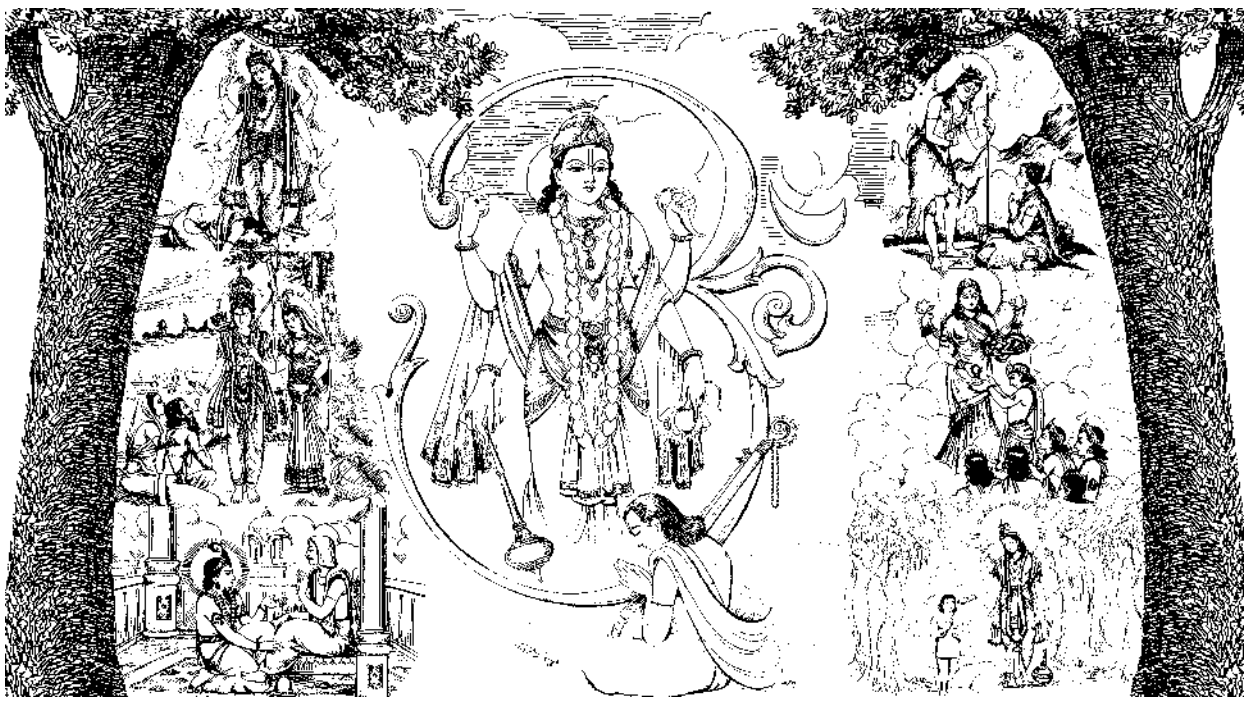
कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, जुलाई २०२२ ई० | संख्या ७

पूर्ण संख्या ११४८

श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरु-सेवा

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥
निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥
उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, जुलाई २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ७

विषय-सूची

विषय — **पृष्ठ-संख्या**

१- श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरु-सेवा ३
२- सम्पादकीय ५
३- कल्याण ६
४- अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति [**आवरणचित्र-परिचय**] ७
५- सत्संगकी कुछ सार बातें [**अनमोल वचन**] (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८
६- जब अपवित्र विचार घेरते हैं! [**हमारे आन्तरिक शत्रु**] (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ९
७- गुरु-तत्त्व (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) १५
८- आत्मविजय (साधुवेशमें एक पथिक) १६
९- आश्रितका त्याग उचित नहीं [**बोधकथा**] १७
१०- कर्तव्य [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १८
११- भगवान् श्रीरामके दत्तक पुत्र (श्रीगोविन्दप्रसादजी मिश्र) १९
१२- 'रे मन! तू क्यों घबराता है' [**कविता**] श्रीहरिओमकुमारजी श्रीवास्तव २१
१३- गीतामें जीवन-दृष्टि और व्यक्तित्व-विकासके सूत्र (श्रीप्रभुनारायणजी श्रीवास्तव) २२
१४- प्रसन्नता तो आपके आस-पास ही है (श्रीबलविन्दरजी 'बालम') २७
१५- भूतधात्री युगाद्या शक्तिपीठ—क्षीरग्राम [**तीर्थ-दर्शन**] (श्रीप्रदीपकुमारजी) २९
१६- भक्त पलटूदास [**भक्त-गाथा**] ३०
१७- संस्कृति, धर्म एवं आस्थाकी पर्याय—गंगा (प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र) ३२
१८- भारतीय प्रतिमा-कलामें बलदेवजीका स्थान (डॉ० श्रीभगवतीलालजी राजपुरोहित) ३७
१९- खूब विचारकर कार्य करना चाहिये [**बोधकथा**] ३८
२०- भगवत्तत्त्वदर्शी सन्त श्रीश्रीशंकर चैतन्य भारती [**संत-चरित**] (श्रीश्रीकृष्णजी पन्त) ३९
२१- गौरा [**गो-चिन्तन**] (श्रीमती महादेवीजी वर्मा) ४०
२२- सुभाषित-त्रिवेणी ४३
२३- व्रतोत्सव-पर्व [**भाद्रपदमासके व्रत-पर्व**] ४४
२४- कृपानुभूति ४५
२५- पढ़ो, समझो और करो ४६
२६- मनन करने योग्य ४९
२७- गीताप्रेस-शताब्दीवर्ष-समारोहका भव्य शुभारम्भ ५०

चित्र-सूची

१- अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति ... (रंगीन) .... आवरण-पृष्ठ
२- श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरुसेवा ...... (,,) .... मुख-पृष्ठ
३- अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति .. (इकरंगा) ७
४- बाली और भगवान् श्रीरामका संवाद .... (,,) १९
५- श्रीरामका अंगदको लंका भेजना (,,) २०
६- रावणकी सभामें अंगदका प्रण .... (,,) २०
७- भक्त पलटूदास .... (,,) ३०
८- बलदेवजीकी प्रतिमा .... (,,) ३७
९- सन्त श्रीश्रीशंकरचैतन्य भारती ... (,,) ३९

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000) ; **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरि: ॥

प्राय: प्रत्येक सनातनीके घरमें पूजा-पाठके प्रारम्भमें निम्नलिखित मन्त्र बोला जाता है—

अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
य: स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तर: शुचि: ॥

इसका सामान्यत: अर्थ है कि पवित्र अथवा अपवित्र किसी भी अवस्थासे होता हुआ कोई व्यक्ति जब भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण कर लेता है, तो वह भीतर-बाहरसे पवित्र हो जाता है।

'पुण्डरीकाक्ष' भगवान् विष्णुका नाम है। भगवान्का स्मरण पवित्र करनेवाला होता है, यह सर्वस्वीकृत सगुण उपासनाकी दृष्टि है और इसका प्रयोग सर्वथा मंगलकारी है।

एक और ज्ञानदृष्टि यह भी है कि अपने भीतर जो सब कुछ देखनेवाला द्रष्टा बैठा है, जो भीतरी आँख (अक्ष) है, वह पुण्डरीक (कमल)-की भाँति संसार-सागर (भव-जल)-में रहकर भी उससे अस्पृष्ट बनी रहती है। उस अपनी भीतरी आँख (अक्ष)-का निरन्तर स्मरण करते रहनेसे बाहर-भीतरकी कोई अशुद्धि स्पर्श नहीं कर सकती। यह नित्य पवित्रीकरण है। नारायण हरि।

—सम्पादक

हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—इस जगत्‌में जो कुछ है, सबमें भगवान् विराजमान हैं, सब भगवान्‌के शरीर हैं अथवा सब स्वयं भगवान् ही हैं। यह समझकर सबका सम्मान करो, सबका हित करो, सबकी सेवा करो। किसीका भी कभी अपमान न करो, किसीका कभी अहित मत करो, किसीको भी कभी दु:ख मत पहुँचाओ। इस सत्यको सदा स्मरण रखो। केवल साधनाके समय ही नहीं, व्यवहारके समय भी। फिर तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार साधन बन जायगा, प्रत्येक कर्मसे तुम भगवान्‌की पूजा करोगे; क्योंकि प्रत्येक प्राणी-पदार्थ, जिससे तुम्हारा सम्पर्क होगा, तुम्हें अपने इष्ट भगवान्‌के रूपमें ही दिखायी देगा।

याद रखो—व्यवहारमें अपने-अपने वेशके अनुसार (वर्णाश्रम, व्यक्ति, सम्बन्ध तथा कर्मके अनुसार नाटकके अभिनयकी भाँति) भेद होगा, पर उस भेदमें भी तुम्हारी दृष्टिमें एक भगवान् ही रहने चाहिये। इस अभ्यासका आरम्भ पहले अपने घरसे करो। नौकर सामने आया, उसे देखते ही पहचान लो—इस नौकरके रूपमें मेरे आराध्यदेव भगवान् सामने खड़े हैं—मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर लो, फिर मन-ही-मन उनसे आज्ञा माँगो, कहो—'भगवन्! आप नौकरके स्वाँगमें हैं और मैं मालिकके। अब आप मुझे आज्ञा दें कि मैं स्वाँगके अनुसार आपके साथ बर्ताव-व्यवहार करूँ, परंतु मेरी प्रार्थना है, नाथ! मैं व्यवहार करते समय यह कभी न भूलूँ कि मेरे सामने नौकरके रूपमें मेरे प्रभु खड़े हैं और मैं अपने प्रत्येक व्यवहारसे उनकी प्रीतिके लिये उनकी पूजा कर रहा हूँ। इसी प्रकार भंगिनसे भेंट हो तो उस भंगिन मैयामें भी भगवान्‌को पहचानकर मन-ही-मन प्रणाम करो और फिर प्रार्थना करके उसके साथ व्यवहार करो। इसी तरह पत्नी, पति, पुत्र, कन्या, माता-पिता, भाई—सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करते हुए प्रभुके दर्शन करो और उनकी पूजा करो।

याद रखो—तुम अपने प्रत्येक कर्मसे इस प्रकार दिनभर भगवान्‌की प्रत्यक्ष पूजा कर सकते हो। वकील मवक्किलको, मवक्किल वकीलको; डॉक्टर-वैद्य रोगीको और रोगी डॉक्टर-वैद्यको; दूकानदार ग्राहकको और ग्राहक दूकानदारको; धनी गरीबको और गरीब धनीको भगवान्‌के रूपमें देखें और उन्हें पहचानकर मन-ही-मन प्रणाम कर लें और प्रार्थना करके व्यवहार करें एवं व्यवहार करते समय यह भूलें नहीं कि मैं भगवान्‌के साथ व्यवहार कर रहा हूँ।

याद रखो—भगवान्‌की प्रार्थनाके लिये किसी अमुक मन्त्र, श्लोक, छन्द या वाक्योंकी आवश्यकता नहीं है। न नपे-तुले शब्दोंकी जरूरत है। अपनी सरल भाषामें, अपने शब्दोंमें, अपने मनकी वाणीमें दिल खोलकर मनकी बात अपने प्रभुके सामने रखनी चाहिये। हाँ, प्रभुको पहचाननेमें भूल नहीं होनी चाहिये। निरन्तर सबमें प्रभुके दर्शन और सब कार्योंके द्वारा, प्रत्येक व्यवहारके द्वारा प्रभुका पूजन होते रहना चाहिये। प्रभु तो स्नेहमयी माँ हैं, जिसका हृदय स्वभावसे ही अपने बच्चेके प्रति स्नेहसे भरा रहता है, वह शिशुकी उस भाषाको सुनकर और भी प्रसन्न होती है, जिसमें व्याकरणकी अशुद्धि ही नहीं, उच्चारणमें भी अपूर्णता होती है तथा वह माँ बच्चेकी प्रत्येक बातको समझ लेती है। इसी प्रकार भगवान् हमारी विद्वत्ताभरी बाहरी वाणीसे प्रसन्न नहीं होते। वे तो हृदयकी सरलता तथा सचाईसे भरी अटपटी वाणीपर ही रीझते हैं। इसलिये भगवान्‌को नि:संकोच होकर अपनी भाषामें अपनी बात कह दो। कहना तो इतना ही है कि वे ऐसी शक्ति दें, ऐसी कृपा करें, जिससे किसीके भी साथ व्यवहार करते समय यह स्मरण रहे कि 'इस रूपमें मेरे प्रभु हैं और मैं प्रभुके साथ ही व्यवहार कर रहा हूँ।'

याद रखो—ऐसा कर सके तो तुम्हारा जीवन पूजामय जीवन बन जायगा और तुम प्रतिक्षण भगवान्‌के दर्शन-पूजनका सौभाग्य प्राप्त करके शीघ्र ही सर्वत्र तथा सर्वरूपमें एकमात्र भगवान्‌की उपलब्धि कर लोगे और यों जीवनके परम साध्यको सहज ही प्राप्त कर लोगे। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

अभिमन्यु-वधसे व्यथित और क्रोधित अर्जुनने प्रतिज्ञा की कि 'मैं कल सूर्यास्ततक अभिमन्युकी मृत्युमें कारण बने जयद्रथका वध कर डालूँगा, नहीं तो अग्नि-समाधि ले लूँगा।' जब यह बात कौरव-पक्षमें पहुँची तो कौरवोंके प्रधान सेनापति द्रोणाचार्यने जयद्रथ और दुर्योधनको यह कहते हुए आश्वस्त किया कि 'मैं कल कमल व्यूह बनाऊँगा और जयद्रथ उसमें सुरक्षित रहेगा, अर्जुन वहाँतक पहुँच ही नहीं पायेगा।'

इधर कृष्णने सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तराको आश्वासन दिया कि पार्थ कल अवश्य ही जयद्रथका वध करेंगे। उन्होंने अर्जुनको अगले दिनके युद्धके लिये शुभकामना देते हुए उनसे शयन करनेको कहा और स्वयं अपने शिविरमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपने सारथि दारुकको बुलाया और कहा कि 'कल युद्ध बड़ा ही भयंकर होगा और मुझे किसी भी प्रकारसे अर्जुनको सुरक्षित रखते हुए जयद्रथका वध कराना है। मेरे रथको तुम मेरे शस्त्रास्त्रों (सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, नन्दन खड्ग, शार्ङ्ग धनुष एवं अक्षय तूणीरों)-से सुसज्जित रखना और मेरे पांचजन्यका उद्‌घोष करनेपर उसे तुरंत मेरे पास ले आना।

भगवान् कृष्ण युद्धकी परिस्थितियोंको समझ रहे थे, अतः उन्होंने अपनी योगमायाद्वारा अर्जुनकी स्वप्नावस्थामें प्रवेश किया और उन्हें लेकर भगवान् शंकरके दिव्य कैलासलोकको गये और वहाँ उनके दर्शन कराये। भगवान् शंकर नर-नारायणरूप अर्जुन और श्रीकृष्णको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आनेका कारण पूछा। तब अर्जुन और श्रीकृष्णने उनकी स्तुति की और दिव्य पाशुपतास्त्रका ज्ञान पुनः देनेका निवेदन किया।

तब भगवान् शंकरने कहा—'हे श्रेष्ठ वीरो! यहाँ निकट ही एक अमृतमय दिव्य सरोवर है, उसीमें मैंने अपना दिव्य धनुष और बाण रख दिया है, उन्हें लेते आओ। शिवजीकी आज्ञासे जब कृष्ण और अर्जुन उस सरोवरपर गये तो वहाँ उन्हें दो महान् नागोंके दर्शन हुए। तब श्रीकृष्ण और अर्जुनने पुनः भगवान् शंकरका शतरुद्रियसे स्तवन किया, जिसके प्रभावसे वे दोनों महानाग धनुष और बाणके रूपमें परिवर्तित हो गये। तब उन दोनोंने लाकर उन्हें भगवान् शंकरको समर्पित कर दिया।

तदनन्तर भगवान् शंकरकी पसलियोंसे एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ। उसने वीरासनमें बैठकर उस धनुषपर विधिवत् बाणका संधान किया। अर्जुनने उस क्रियाको ध्यानपूर्वक देखकर हृदयस्थ कर लिया। उस समय भगवान् शंकरने जो मन्त्र पढ़ा, उसको भी उन्होंने याद कर लिया। तब प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने अपना पाशुपत नामक घोर अस्त्र अर्जुनको दे दिया। उसे पाकर अर्जुनके हर्षकी सीमा न रही और उन्होंने अपने-आपको कृतकृत्य मानकर भगवान् शंकरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वे अपने शिविरमें वापस लौट गये। इस प्रकार जयद्रथ-वधके पूर्व स्वप्नमें अर्जुनको भगवान् शंकरके दर्शन हुए। [महाभारत]

अनमोल वचन—

सत्संगकी कुछ सार बातें

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

❁ मनुष्य-जीवनके समयको अमूल्य और क्षणिक समझकर उत्तम-से-उत्तम काममें व्यतीत करना चाहिये। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये।

❁ यदि किसी कारणवश कभी कोई क्षण भगवच्चिन्तनके बिना बीत जाय तो उसके लिये पुत्रशोकसे भी बढ़कर घोर पश्चात्ताप करना चाहिये, जिससे फिर कभी ऐसी भूल न हो।

❁ जिसका समय व्यर्थ व्यय होता है, उसने समयका मूल्य समझा ही नहीं।

❁ मनुष्यको कभी निकम्मा नहीं रहना चाहिये, अपितु सदा-सर्वदा उत्तम-से-उत्तम कार्य करते रहना चाहिये।

❁ मनसे भगवान्का चिन्तन, वाणीसे भगवान्के नामका जप, सबको नारायण समझकर शरीरसे जगज्जनार्दनकी नि:स्वार्थ सेवा—यही उत्तम-से-उत्तम कर्म है।

❁ बोलनेके समय सत्य, प्रिय, मित और हितभरे शास्त्रानुकूल वचन बोलने चाहिये।

❁ अपने दोषोंको सुनकर चित्तमें प्रसन्नता होनी चाहिये।

❁ यदि कोई हमारा दोष सिद्ध करे, तो उसके लिये जहाँतक हो, सफाई नहीं देनी चाहिये; क्योंकि सफाई देनेसे दोषोंकी जड़ जमती है तथा दोष बतलानेवालेके चित्तमें भविष्यके लिये रुकावट होती है। इससे हम निर्दोष नहीं हो पाते।

❁ यदि हम निर्दोष हैं तो दोष सुनकर हमें मौन हो जाना चाहिये, इससे हमारी कोई हानि नहीं है और यदि सदोष हैं तो अपना सुधार करना चाहिये।

❁ दोष बतलानेवालेका गुरु-तुल्य आदर करना चाहिये, जिससे भविष्यमें उसे दोष बतलानेमें उत्साह हो।

❁ अपने निकट-सम्बन्धीका दोष सहसा नहीं कहना चाहिये, कहनेसे उसको दु:ख हो सकता है; जिससे उसका सुधार सम्भव नहीं।

❁ जीवनको अधिक खर्चीला नहीं बनाना चाहिये। ऋषि-मुनियोंका जीवन खर्चीला नहीं था। अधिक खर्चीला जीवन मनुष्यको रुपयों और दूसरे पुरुषोंका दास बना देता है, जिसके कारण अनेक पाप करने पड़ते हैं और दर-दर भटकना पड़ता है।

❁ भोजनके समय स्वादकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये; क्योंकि वह पतनका हेतु है। स्वास्थ्यकी ओर लक्ष्य रखना भी वैराग्यमें कमी ही है।

❁ सोते समय भी भगवान्के नाम-रूपका स्मरण विशेषतासे करना चाहिये, जिससे शयनका समय व्यर्थ न जाय। शयनके समयको साधन बनानेके लिये सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहको भुलाकर भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव और चरित्रका चिन्तन करते हुए ही सोना चाहिये।

❁ अपने ऊपर भगवान्की अहैतुकी दया और प्रेम समझ-समझकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये।

❁ एकान्तमें मनको सदा यही समझाना चाहिये कि परमात्माके सिवा किसीका चिन्तन न करो; क्योंकि व्यर्थ चिन्तनसे बहुत हानि है।

❁ भगवान्के समान अपना कोई भी हितैषी नहीं है, अत: अपने अधीन सब पदार्थोंको और अपने-आपको राजा बलिकी भाँति भगवान्के समर्पण कर देना चाहिये।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

[काम, कारण और निवारण]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'नाद रीझि तनु देत मृग!'

कानोंसे मरा भी जा सकता है, तरा भी।

कानोंके चलते भी हम अनेक बार अपवित्र विचारोंके चक्करमें पड़ जाते हैं।

गन्दे गीतों, ठुमरी-टप्पोंने, गन्दे प्रसंगों, विवरणों और गन्दी कहानियोंने, अश्लील चर्चाओंने न जाने कितने व्यक्तियोंको पतनके गर्तमें डुबा दिया।

वेश्याओंकी गन्दी संगीत-लहरीने न जाने कितने लोगोंको भवसागरमें डुबा दिया। आजकल सिनेमाकी संगीत-लहरीने तो चारों ओर सर्वनाशकी आग लगा रखी है।

अश्लील वार्ता शुरू हुई कि पतनका पथ प्रशस्त हुआ।

× × ×

कानोंका विषय है शब्द।

शब्द हम उत्तम ही ग्रहण करें, बस, समस्या हल है।

कानोंमें सीसा पिघलाकर डालने और बहरे बननेकी जरूरत नहीं।

जरूरत है कानोंका सदुपयोग करनेकी।

× × ×

कानोंसे हम अच्छे शब्द ग्रहण करें, गन्दे नहीं।

पवित्र बातें सुनें, अपवित्र नहीं।

ज्ञानवर्धक प्रसंग सुनें, अश्लील प्रसंग नहीं।

कल्याणकारी बातें सुनें, अहितकर बातें नहीं।

कामकी बातें सुनें, बेकामकी नहीं।

× × ×

कानसे तरनेके लिये तुलसीकी कसौटी है—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

× × ×

और नाक?

नाक भी कभी-कभी अपवित्र विचारोंको उकसाती है।

इत्र-फुलेल फुरहरियाँ, गुलाब-केवड़ेकी खुशबूसे सुवासित प्राणी-पदार्थोंके सम्पर्कमें आनेपर सहज ही कामोद्दीपन हो जाता है।

सेण्ट और स्नो, क्रीम और पाउडरकी मादक गन्ध अपवित्र विचारोंको उकसाया करती है।

तभी तो मनु बाबाने आदेश दे रखा है—

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥

(मनुस्मृति २। १७७)

'ब्रह्मचारीके लिये मधु, मांस, इत्र आदि पदार्थ, पुष्पोंकी मालाएँ, चन्दन, रस, स्त्रियाँ, सभी प्रकारके आसव, प्राणियोंकी हिंसा वर्जित है।'

× × ×

स्निग्ध पदार्थोंकी गन्ध हमें ललचाती है। विकृत और कृत्रिम, भुने और तले पदार्थोंका सोंधापान हमें अपनी ओर आकृष्ट करता है। इनके आकर्षणमें फँसे कि अपवित्र विचारधारा पनपी!

× × ×

लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं ही है कि हम नाकसे कोई काम ही न लें अथवा उसमें रूईका फाहा ठूँसे रहें।

जी, नहीं। नाकका हम सदुपयोग करें।

उससे हम प्राकृतिक पदार्थोंकी गन्ध लें। सोंधी मिट्टीकी गन्ध लें। धूप, दीप, नैवेद्य, हवन-सामग्रीकी पवित्र गन्ध लें।

शुद्ध, सात्त्विक पदार्थोंकी, फल-दूधकी, शाक-सब्जी और अंकुरित अन्नकी, अविकृत पदार्थोंकी गन्ध लें।

कितना धन्य है—

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥

× × ×

और निगोड़ी जीभ?

इसकी शैतानियोंका कहीं पार है?

क्या नहीं चाहिये इसे?

इसकी रसकी पिपासा लाजवाब है।

तभी तो जिसने जीभको वशमें कर लिया, रसनाको सचमुच 'रस+ना' बना लिया, उसने आधा जग जीत लिया।

×   ×   ×

कबीरने कहा है—

'कबिरा' छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कै, भजन करौ निस्संक॥

परंतु शरीररक्षाके लिये जितना चाहिये, केवल उतने भोजनसे कहीं हमारी तृप्ति हो पाती है?

जीभके चटोरेपनके चलते हम दुनियाभरका पाप तो बटोरते ही हैं, दूसरोंको भूखों मारते हैं, असंख्य रोगोंको न्यौता देते हैं और डॉक्टरोंका बिल बढ़ाते हैं ऊपरसे।

भोजन स्वास्थ्यवर्धक है कि नहीं, उससे आरोग्य सुधरेगा कि नहीं—यह हम नहीं देखते।

हम देखते हैं वह स्वादिष्ट तो है? चटपटा तो है? खट्टा और सलोना तो है?

हमें षट्रस व्यंजन चाहिये, स्वास्थ्य जहन्नुममें जाय तो जाय!

×   ×   ×

यही कारण है कि हमने जीभकी तुष्टिके लिये असंख्य वस्तुएँ तैयार कर रखी हैं—पूड़ी और कचौड़ी, हलुआ और मोहनभोग, रसगुल्ला और गुलाबजामुन, लड्डू और पेड़ा, अचार और मुरब्बा, और न जाने क्या-क्या!

एक-दो चीजें हैं जो गिनायी जायँ!

महिलाओंकी इतनी भारी जमात, हलवाइयों और होटलवालोंका इतना भारी मेला हमने इसी 'महत्त्वपूर्ण' कामके लिये लगा रखा है कि वे हमारे चटोरेपनको शान्त करनेके लिये भाँति-भाँतिके पदार्थ तैयार करते रहें। सुबह-शाम, दिन-रात, आठ पहर, चौंसठ घड़ी।

×   ×   ×

नमक, मिर्च, चीनी, मसाला, तेल, डालडा, घी आदिके सहारे हम पदार्थोंको स्वादिष्ट बनाते हैं। फिर भी जी नहीं भरता तो हम प्राकृतिक पदार्थोंको कई-कई दिनोंतक कभी-कभी महीनोंतक सड़ाते हैं। विकृति जब अधिक हो जाती है, तब हम उसे चखकर खुश होते हैं—'वाह, कैसी लजीज है यह चीज!'

क्या कहने हैं हमारे स्वादके!

×   ×   ×

प्राकृतिक जीवन बितानेवालोंका दावा है और यह दावा सोलह आना सही है कि शरीरके पोषणके लिये हमें बहुत थोड़े भोजनकी आवश्यकता है।

स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये हम ये सप्त सूत्र याद रखें तो हमारा काम बन जाय।

(१) **खानेको आधा करो, पानीको दूना।**
कसरतको तिगुना और हँसना चौगुना॥

(२) अन्न और साग, फल और हरी तरकारी कच्चे रूपमें, अंकुरित करके प्राकृतिक रूपमें ग्रहण करो। आगसे कम-से-कम काम लो। मिर्च, मसाला, तेल, खटाई, मिठाईको चौकेसे निकाल दो। घी, तेल, चिकनाईमें तली-भुनी चीजें बिलकुल मत खाओ।

(३) खटास पैदा करनेवाली चीजें—कार्बोज, प्रोटीन और चिकनाई—कम-से-कम खाओ।

(४) रोगसे बचानेवाली चीजें—फल और तरकारियाँ खूब खाओ। खटाई पैदा करनेवाली चीजोंसे कम-से-कम तिगुनी।

(५) प्रत्येक कौरको इतना चबाओ कि वह लारके साथ मिलकर एक हो जाय।

(६) केवल इतना खाना खाओ कि पेट न तो खाते समय भारी लगे और न खानेके बाद।

(७) मादक पदार्थोंके पास भी मत फटको। शराब, ताड़ी, गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट ही नहीं, चाय भी मत पियो।

×   ×   ×

हमारे शास्त्रोंमें भोजनकी पवित्रतापर, उसकी सात्त्विकतापर जो इतना जोर दिया गया है, वह किस लिये?

केवल इसीलिये कि उससे सात्त्विक विचार उत्पन्न होंगे, पवित्र विचार बनेंगे, जीवन पवित्र बनेगा, बुद्धि शुद्ध होगी, रज और तमसे छुटकारा मिलेगा और सत्त्वगुणकी वृद्धि होगी।

'जैसा खावै अन्न, तैसी उपजै बुद्धि।'

×   ×   ×

द्रव्य संस्कारका, भोजनके पदार्थोंका चित्तपर पूरा संस्कार पड़ता है। शान्त और बुद्धिमान् व्यक्तिको भी कड़ी शराब पिला दी जाय तो वह भी ऊटपटांग बकने लगेगा। इसीलिये यह जरूरी है कि न तो असात्त्विक पदार्थ खाये-पिये जायँ और न ऐसे लोगोंका संग किया जाय, जिनके विचार गन्दे हैं, मलिन हैं, अपवित्र हैं।

× × ×

अर्थात् जीभके रास्ते हम सात्त्विक और पवित्र पदार्थ ही पेटमें जाने दें।

साथ ही यह भी ध्यान रखें कि ये आवश्यक मात्रासे अधिक न हों।

हमारे भोजनमें रबड़ी-मलाई, पूड़ी-कचौड़ी, हलवा, मोहनभोग तो रहे ही नहीं, रोटी-दाल, शाक-सब्जी, फल और दूध भी मात्रासे अधिक न रहे।

भोजन पौष्टिक तो हो, सन्तुलित भी हो।

× × ×

और, यह तभी सम्भव है, जब हम भोजनसे स्वादको निकाल बाहर करें।

परंतु अस्वाद-व्रतका पालन सरल नहीं है।

मैंने महीनों नमक छोड़कर देखा है, चीनी छोड़कर देखी है, मिर्च-मसाला, खटाई-अचार छोड़कर देखा है, फिर भी रसासक्तिसे छुटकारा कहाँ मिल पाया है?

परंतु जानता हूँ कि रसासक्ति छूटनेका रास्ता यही है।

× × ×

अस्वादके लिये बापूने सुन्दर कसौटी बतायी है—

'स्वादकी दृष्टिसे किसी भी चीजको चखना व्रतका भंग है।··· जो अनेक चीजें हम खाते हैं, वे शरीर-रक्षाके लिये जरूरी न होनेसे त्याज्य ठहरती हैं और यों जो सहज ही असंख्य चीजोंको छोड़ देता है, उसके समस्त विकारोंका शमन हो जाता है।···इसके लिये··· सावधानीकी, जागृतिकी बहुत ज्यादा जरूरत है। ऐसा करनेसे कुछ ही समयमें हमें मालूम होने लगेगा कि हम कब और कहाँ स्वाद करते हैं। मालूम होनेपर हमें चाहिये कि हम अपनी स्वादवृत्तिको दृढ़ताके साथ कम करें। इस दृष्टिसे संयुक्तपाक—यदि वह अस्वाद-वृत्तिसे किया जाय—बहुत मददगार है। जो कुछ बना है और जो हमारे लिये त्याज्य नहीं है, उसे ईश्वरकी कृपा समझकर, मनमें भी उसकी टीका न करते हुए, सन्तोषपूर्वक शरीरके लिये जितना आवश्यक हो, उतना ही खाकर हम उठ जायँ। वस्तुतः तो आदर्श स्थिति वह है, जिसमें अग्निका खर्च कम-से-कम या बिलकुल न हो।'

× × ×

भोजन सात्त्विक हो, पौष्टिक और सन्तुलित हो, अस्वादकी दृष्टिसे बना हो, प्रसन्नतापूर्वक शुद्धतासे बनाया गया हो, उसे हम प्रभु-प्रसादी समझकर प्रसन्न मनसे ग्रहण करें।

किंतु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है।

वह ईमानदारीकी कमाईका भी होना चाहिये।

पवित्र विचारोंके लिये अर्थशुद्धि भी जरूरी है।

× × ×

कहते हैं कि एक महात्मा जंगलसे होकर कहीं जा रहे थे।

रास्तेमें प्यास लगी और सामने ही दीख पड़ा एक कुआँ।

रस्सी और बाल्टी भी वहाँ मौजूद थी।

महात्माजीने पानी खींचकर पिया और उसे पीते ही वे सोचने लगे कि क्यों न मैं इस रस्सी-बाल्टीको अपने साथ रख लूँ। जहाँ प्यास लगेगी, पानी खींचकर पी लिया करूँगा।

रस्सी-बाल्टी लेकर चलनेको हुए कि विवेकका उदय हुआ—छिः छिः, मैं यह चोरी कर रहा हूँ!

बड़ी ग्लानि हुई। हृदयमें ऐसा मलिन भाव आया तो क्यों?

कारणका पता लगाने वे जा पहुँचे राजाके दरबारमें और राजासे सवाल कर दिया—'महाराज! उस जंगलमें जो कुआँ बना है, उसमें किसका पैसा लगा है?'

राजाने पता लगवाया तो मालूम हुआ कि एक लावारिस सुनारका धन जब्त कर लिया गया था, उसीके पैसेसे वह कुआँ बनवाया गया था।

महात्मा बोले—अवश्य ही उस सुनारने चोरी कर-करके धन जोड़ा होगा, तभी तो उसका पानी पीते ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और मैं रस्सी-बाल्टी चुराकर चल पड़ा।

× × ×

एक गृहस्थने एक बार बड़ी श्रद्धासे साधुओंकी एक टोलीको भोजन कराया।

सुबह उठे तो सब साधु हैरान!

रात्रिमें सबको स्वप्नदोष हो गया।

गृहस्थको बुलाकर पूछा—बता तो तूने हमें किसलिये भोजन कराया था?

गिड़गिड़ाकर उसने कहा—महाराज! मेरे कोई पुत्र नहीं है। बड़ी इच्छा है कि मेरे पुत्र हो। इसी आशासे आपलोगोंको मैंने भोजन कराया था!

× × ×

स्पर्शसे अपवित्र विचार अपनी पराकाष्ठापर जा पहुँचते हैं। छुआ कि गिरे!

युवक और युवतीने, पुरुष और स्त्रीने जहाँ विकारग्रस्त होकर किसीको छुआ कि वासना भड़की और पतन हुआ।

बड़े-बड़े साधु, संन्यासी, योगी, यति, विद्वान्, पण्डित, दार्शनिक, विचारक भी स्पर्श-वासनासे आक्रान्त हो जाते हैं और फिर उन्हें नरकमें भी मुश्किलसे ठिकाना मिलता है।

स्पर्शसे विकार पलोंमें पनपता है, सेकेण्डोंमें बढ़ता है और मिनटोंमें गिरा देता है।

× × ×

शास्त्रोंमें माँ-बहनके साथ भी एकान्तमें बैठनेकी मनाही की गयी है। पता नहीं, इन्द्रियाँ कब धोखा दे बैठें! कौन जानता है कि किस क्षण विकार जाग्रत् हो जायगा, स्पर्शकी आकुलता बढ़ जायगी और मानव पतनके गड्ढेमें गिर जायगा!

इसलिये स्पर्शसे बचनेकी पूरी सतर्कता रखनी है।

दूसरोंका ही नहीं, अपने भी विभिन्न अंगोंको बार-बार छूनेसे बचना है।

कोमल शय्या, चिकने और रेशमी वस्त्र, स्निग्ध पदार्थ, सुगन्धित साबुन, क्रीम आदि शृंगार-सज्जाके प्रसाधन भी विकारोंको भड़काते हैं। उनसे भी दूर रहनेकी जरूरत है।

× × ×

एक बालब्रह्मचारी अपने भक्तोंके बालक-बालिकाओंको गोदमें बैठाकर जब-तब प्यार करते हुए उनके कपोल आदिका स्पर्श कर लिया करते थे—

सर्वथा निर्दोषभावसे।

कोई मना करता तो वे उसका मजाक उड़ाते।

उन्हें अपनी निर्विकारताका बड़ा अभिमान था।

स्पर्शद्वारा प्यारकी यह प्रक्रिया जारी रही।

और पन्द्रह साल बाद जब भक्तोंकी ये बालिकाएँ सयानी हुईं, तब उनके स्पर्शसे इन बुढ़ऊ ब्रह्मचारीके मनमें विकार आने लगा और तब उन्होंने अस्पर्श-व्रतकी महत्ता स्वीकार की और प्रतिज्ञा कर ली—ना बाबा, अब ऐसा नहीं करूँगा।

आजके सिनेमा-संसारमें अस्पर्श व्रतके विरुद्ध जो अनाचार चल रहा है और भले-भले तरुण-तरुणी इस नरकाग्निमें अपनेको झोंक रहे हैं, इसका क्या परिणाम होगा!

× × ×

वस्तुत: अस्पर्श योगकी साधना हमें दीर्घकालतक चलानी होगी। धीरे-धीरे मनको निर्विकार बनाते चलना होगा। यह कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं।

बापूने ब्रह्मचर्यकी कसौटी यह बतायी है—

'ब्रह्मचर्यका अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्रीको स्पर्श न करूँ, पर ब्रह्मचारी बननेका अर्थ है कि किसी स्त्रीका स्पर्श करनेसे भी मुझमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागजको स्पर्श करनेपर नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे झिझकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य कौड़ी कामका नहीं। जिस निर्विकार दशाका अनुभव हम मृत शरीरको स्पर्शकर कर सकते हैं, उसीका अनुभव जब हम किसी सुन्दरी-से-सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सकें, तभी हम सच्चे ब्रह्मचारी हैं।'

× × ×

बापू ऐसा कहकर ही नहीं रह गये, जीवनके अन्तिम क्षणतक उन्होंने अपनेको इस कसौटीपर कसा भी।

यह 'असिधारा व्रत', ब्रह्मचर्यकी यह अलौकिक साधना, स्थितप्रज्ञताकी यह कठिन चढ़ाई सबके वशकी बात नहीं। इसलिये सबको ऐसा दुस्साहस करना भी नहीं चाहिये।

अपनी शक्ति और सामर्थ्यको देखकर ही इस आगमें हाथ डालना चाहिये। क्षण-क्षणपर पल-पलपर जहाँ गिरनेका खतरा है, वहाँ बहुत सोच-समझकर आगे

बढ़नेकी जरूरत है।

× × ×

ज्ञानेन्द्रियोंके सदुपयोगके साथ-साथ हमें कर्मेन्द्रियोंका भी सदुपयोग करना है। किसी भी इन्द्रियको स्वेच्छाचारकी छूट नहीं मिलनी चाहिये।

हाथ सत्कर्म ही करें। पैर सत्पथपर ही चलें। वाणी जो मुखसे निकले वह दूसरोंका हित करनेवाली हो, मीठी हो। सत्य हो। उससे किसीको उद्वेग न हो।

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

× × ×

पूज्य पिताजीने एक बार एक साधुका विवरण सुनाया था।

एक व्यापारी जब व्यापारके लिये विदेश जाने लगा, तब उसकी नवविवाहिता पत्नीने पूछा—'नाथ, मैं कैसे रहूँगी, तुम्हारे बिना कामपीड़िता होनेपर क्या करूँगी?'

व्यापारी बोला—मेरी अनुपस्थितिमें तुम उस व्यक्तिको बुलाकर अपनी वासनाकी तुष्टि कर सकती हो, जो शौचके लिये सबसे दूर जाता हो।

कुछ दिन बाद जब वह व्यापारीकी पत्नी वासनासे पीड़ित हुई, तब वह छतपरसे वैसे व्यक्तिकी खोज करने लगी, जैसेके लिये उसका पति कह गया था।

उसने देखा कि एक साधु है, जो सबसे दूर जाता है शौचके लिये।

एक दिन उसने उस साधुको अपने घर बुलाया। जब भीतर आ गया, तब उसने साधुसे प्रार्थना की—आप ऊपर चले आइये छतपर।

साधु जैसे ही जीना चढ़ने लगा कि उसका मिट्टीका कमण्डलु ठेस लगकर टूट गया।

साधु तो लगा फुक्का फाड़-फाड़कर रोने।

युवती बोली—जाने दीजिये महाराज! मैं आपके लिये दूसरा कमण्डलु मँगवा दूँगी। मिट्टीके कमण्डलुकी जगह सोनेका कमण्डलु मँगवा दूँगी।

साधु बोला—माँ, कमण्डलु फूटनेका दुःख नहीं है। दुःख तो इस बातका है कि जीवनमें जो अंग अभीतक केवल एक पात्रको दिखाया था, वह अब दूसरेको दिखाना पड़ेगा!

युवतीकी वासना पलक मारते उड़ंछू हो गयी। उसके लिये पश्चात्ताप करती हुई वह आकर गिर पड़ी साधुके चरणोंपर!

× × ×

हमारा अंग-अंग संयममें जकड़ा हो। उसकी मर्यादाएँ बँधी हों। कैसा भी प्रसंग उपस्थित होनेपर हम विचलित न हों। फिर तो अपवित्र विचार आयेंगे ही कहाँसे?

अंग-अंग हम प्रभुको अर्पित कर दें। हाथ हो, पैर हो, नाक हो, कान हो, वाणी हो, जीभ हो—सब प्रभुकी सेवामें लगा दें।

'जो कछु करूँ सो पूजा!'

प्रभु-प्रेममें हम विभोर हो जायँ। सर्वस्व उन्हें ही अर्पण कर दें। धन्य हो उठे हमारा जीवन।

आतिशे इश्क में जलने का मज़ा तब आये।
दिल जले खाक बने, खाक से पैमाना बने॥

प्रभुसे हम कह दें—

Take my life, and let it be
Consecrated, Lord ! to thee;
Take my hands, and let them more
At the impulse of Thy love.

Take my moments and my days,
Let them flow in ceaseless praise.
Take my feet and, and let them be
Swift and beautiful for Thee.

Take my Voice, and let me sing
Always, Only for my King,
Take my lips, and let them be
Filled with messages from Thee.

Take my silver and my gold;
Not a mite would I withhold,
Take my intellect, and use
Every power as thou Shalt choose.
Take my will, and make it Thine
It shall be no longer mine.

Take my heart, it is Thine own,
It shall be Thy Royal Throne.

Take my love; my Lord ! I pour
At Thy feet it Treasure-store.
Take myself and I will be
Ever, only, all for Thee.

लो नाथ, मेरा यह जीवन तुम्हारे चरणोंमें अर्पित है।

लो मेरे ये हाथ, तुम्हारे प्रेमका सन्देश ही ये वहन करें।

लो मेरे जीवनके सारे क्षण। इनमें मैं सदैव तुम्हारी स्तुतिका ही गान करता रहूँ।

लो मेरे ये पैर। तुम्हारा आदेश पालन करनेके लिये ही ये सदैव चलते रहें!

लो मेरी यह वाणी। इससे मैं सदैव तुम्हारे ही गीत गाया करूँ।

लो मेरे ये होठ। हर समय इनसे तुम्हारा ही सन्देश निकला करे।

लो मेरा सारा सोना-चाँदी। सारी दौलत तुम्हारे चरणोंपर न्यौछावर है। मुझे इसमेंसे कानी कौड़ी भी नहीं चाहिये।

लो मेरी बुद्धि। जैसा चाहो इसका उपयोग करो।

लो मेरी सारी कामना। मेरी अपनी इच्छा नामकी कोई चीज न रहेगी अब। इसे तुम अपनी बना लो।

लो मेरा यह हृदय। यह तो तुम्हारा ही है। बना लो इसे अपना सिंहासन।

लो मेरा प्रेम। इसका खजाना मैं तुम्हारे चरणोंपर ही लुटा रहा हूँ।

अन्तमें तुम मुझे ही ले लो।

'मैं तेरा हूँ, सदा तेरा रहूँगा बावफा खादिम!'

× × ×

मतलब, अपवित्र विचारोंके शिकंजेसे मुक्त होनेके लिये हमें सर्वेन्द्रिय-संयमका अभ्यास करना होगा—आठ पहर चौंसठ घड़ी।

हम सदैव पवित्र विचारोंका चिन्तन करें।

विचारोंको हम कभी खाली न रहने दें। 'आलसी दिमाग शैतानका घर।'

हम जो पढ़े-लिखें, वह पवित्र हो।
जो देखें-सुनें, वह पवित्र हो।
जो छुएँ, जो सूँघें, वह पवित्र हो।
जो कुछ करें, वह पवित्र हो।

× × ×

विनोबाजीने ठीक ही कहा है—'हम जीवनरूपी व्यापार करके संस्काररूपी सम्पत्ति जोड़ते हैं। हमें आजसे ही इस बातका विचार करते रहना चाहिये कि मनपर ऊँचे-से-ऊँचे, सुन्दर-से-सुन्दर संस्कार कैसे पड़ें। परंतु अच्छे संस्कारोंके अभ्यासकी पड़ी किसे है, इससे उलटा, बुरी बातोंका अभ्यास अलबत्ते दिन-रात होता रहता है। जीभ, आँख और कानको हम चटोरपन सिखा रहे हैं। अच्छी बातोंकी ओर चित्त लगाना चाहिये। उसमें उसे रँग जाना चाहिये।'

'ऐसी चिन्ता रखो कि हमेशा अच्छे ही संस्कार संगृहीत हों। खराब बात कही, तो पड़ गया उसी क्षण बुरा संस्कार।'

'कितने ही बुरे संस्कार गफलतमें पड़ जाते हैं। नहीं कह सकते वे कब जग पड़ेंगे। सर्वदा ऐसा ही उद्योग करो, जिससे आँख पवित्र रहे, कान निन्दा न सुनें, अच्छा बोलें। संस्कारोंकी दिव्यधारा सारे जीवनमें सतत बहती रहनी चाहिये।'

× × ×

हम रात-दिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल शुभ संस्कारोंके लिये सचेष्ट रहें। सर्वेन्द्रिय-संयममें जी-जानसे जुटे रहें।

परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। अपवित्र विचारोंसे छुटकारा पानेके लिये।

उसके लिये हमें प्रभु-कृपाकी भी सदैव याचना करते रहनी होगी।

बापूके शब्दोंमें 'रामनामका इकतारा चौबीसों घंटे, सोते हुए भी श्वासकी तरह स्वाभाविक रीतिसे चलता रहना चाहिये।'

—और यह तो है ही—

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

गुरु-तत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसारका कोई भी कार्य अनुभवी गुरु या जानकार पथ-प्रदर्शकके बिना सहज ही सफल नहीं होता। केवल पुस्तकें पढ़नेसे काम नहीं चलता, जो मनुष्य उस कार्यको करके सफल हो चुका हो, उसकी सलाह आवश्यक होती है और कठिन कार्य हो तो कुछ दिन उसके पास रहकर विनय और सेवासे उसे प्रसन्न रखते हुए उससे सीखना पड़ता है। जब लौकिक कार्योंका यह हाल है, तब आध्यात्मिक साधनमें तो गुरुकी बड़ी ही आवश्यकता है। वहाँ तो पद-पदपर गिरनेका डर है। इसलिये प्रत्येक साधकको अनुभवी गुरुके शरण होकर अध्यात्मसाधना करनी चाहिये। भारतीय साधनामें गुरु-परम्परा और गुरुकुलोंका बहुत ऊँचा स्थान है; क्योंकि गुरुके बिना ज्ञान नहीं होता। गुरु ही आँखें खोलकर हाथमें मसाल लेकर, विघ्नोंसे बचाकर शिष्यको लक्ष्यस्थानतक सुखसे पहुँचाता है। गुरु और ईश्वरमें कोई भेद नहीं, प्रत्युत शिष्यके लिये तो गुरु ईश्वरसे भी बढ़कर है। यही गुरु-तत्त्व है।

परंतु आजकल सच्चे गुरु प्राय: नहीं मिलते। यथार्थ गुरु सदा ही कठिनतासे मिलते थे। फिर आजकल तो बहुत-से लोभी-लालची और कामी-कपटी लोग गुरु बन गये हैं, इसलिये गुरुवेश कलंकित-सा हो गया है। इसलिये बहुत ही सावधानीसे गुरु बनाना चाहिये। गुरुमें इतने गुण अवश्य होने चाहिये—

'स्वभाव शुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो, धनका लालच जिसे हो ही नहीं, वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता हो, सत्य-तत्त्वको पा चुका हो, परोपकारी हो, दयालु हो, नित्य जप-तपादि साधनोंको स्वयं (चाहे लोक-संग्रहार्थ ही) करता हो, सत्यवादी हो, शान्तिप्रिय हो, योगविद्यामें निपुण हो, जिसमें शिष्यके पापनाश करनेकी शक्ति हो, जो भगवान्‌का भक्त हो, स्त्रियोंमें अनासक्त हो, क्षमावान् हो, धैर्यशाली हो, चतुर हो, अव्यसनी हो, प्रियभाषी हो, निष्कपट हो, निर्भय हो, पापोंसे बिलकुल परे हो, सदाचारी हो, सादगीसे रहता हो, धर्मप्रेमी हो, जीवमात्रका सुहृद् हो और शिष्यको पुत्रसे बढ़कर प्यार करता हो।'

जिनमें ये गुण न हों और निम्नलिखित अवगुण हों, उन्हें गुरु नहीं बनाना चाहिये—

'जो संस्कारहीन हो, वेद-शास्त्रको जानता-मानता न हो, कामिनी-कांचनमें आसक्त हो, लोभी हो, मान, यश और पूजा चाहता हो, वैदिक और स्मार्त कर्मोंको न करता हो, क्रोधी हो, शुष्क या कटुभाषण करता हो, असत्य बोलता हो, निर्दयी हो, पढ़ाकर पैसा लेता हो, कपटी हो, शिष्यके धनकी ओर दृष्टि रखता हो, मत्सर करता हो, नशेबाज, जुआरी या अन्य किसी प्रकारका व्यसनी हो, कृपण हो, दुष्टबुद्धि हो, बाहरी चमत्कार दिखलाकर लोगोंके चित्त हरता हो, नास्तिक हो, ईश्वर और गुरुकी निन्दा करता हो, अभिमानी हो, बुरी संगतिमें रहता हो, भीरु हो, पातकी हो, देवता, अग्नि और गुरुमें श्रद्धा न रखता हो, संध्या-तर्पण, पूजा और मन्त्र आदिके ज्ञानसे रहित हो, आलसी हो, विलासी हो, धर्महीन हो, संन्यासी होकर त्यागी न हो और गृहस्थ होकर गृहिणी रहित हो, शक्तिहीन हो और वृषलीपति हो।'

स्त्रियोंको किसी भी अन्य पुरुषसे दीक्षित होनेकी या किसी पर-पुरुषको गुरु बनानेकी आवश्यकता नहीं है।

सिद्धमन्त्र स्वामी अपनी पत्नीको दीक्षा दे सकता है। दीक्षा न दे तो भी पति उसका परम गुरु ही है। विधवा स्त्री केवल श्रीपरमात्माको ही गुरु समझकर उन्हींका सेवन करे। जो धन और कामिनीका लोभी मालूम हो, ऐसे गुरुसे तो सदा दूर ही रहना चाहिये।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आजकल सद्‌गुरु हैं ही नहीं, उत्कट इच्छा और सच्ची चाह होनेपर संसारसागरसे तारनेवाले सद्‌गुरु अवश्य ही मिलते हैं।

आत्मविजय

(साधुवेशमें एक पथिक)

जीवका स्वरूप अहंकार है, अहंकारसे ही अभिमान उत्पन्न होता है, अभिमानसे महत्त्वाकांक्षाका उदय होता है। वस्तुके संगसे अहंकार और व्यक्तिके संगसे अभिमानका स्फुरण होता है; जीव अहंकारी होकर वस्तुका और अभिमानी होकर व्यक्तिका दास बनता है। वस्तु और व्यक्तिकी दासता ही अहंकारी और अभिमानी जीवके लिये दु:खका कारण है। जबतक जीवके सामने भिन्न वस्तु रहेगी, तबतक वस्तुमय अहंकार रहेगा। और जबतक अपनेसे भिन्न व्यक्ति दीख पड़ेगा, तबतक अभिमान रहेगा।

अहंकारके लिये अभिमान ही आवरण है। अतएव वस्तु और व्यक्तिके पीछे रहनेवाले सत्याधारका योग नहीं हो पाता है। सीमित अहंकारमें अभिमानमूलक महत्त्वाकांक्षा रहती है। यह मन्दबुद्धिवाले रोगियोंके कार्यारम्भमें और विचारशीलों, त्यागियों और भद्र पुरुषोंके कार्यान्तमें उन्हें भ्रमित कर देती है। महत्त्वाकांक्षाका मीठा—मोहक नशा तभी उतरता है, जब जीव वस्तु और व्यक्तिकी सीमा पारकर सत्यका अनुभव कर लेता है।

अहंकार-शक्तिके द्वारा जो कुछ भी किया जाता है, उसका फल पदार्थ-प्राप्तिसे ऊपर उठनेपर महत्त्व-प्राप्तिका रूप ग्रहण कर लेता है। मनुष्यमें अभिमान जितना ही प्रबल है, उतनी ही उसे दूसरेके दृष्टिकोणकी चिन्ता रहती है। जबतक अभिमान रहता है, तबतक स्तुति और निन्दाके प्रति राग-द्वेषका भाव अक्षुण्ण रहता है। मानकी तृप्तिके लिये ही मानव महत्त्वाकांक्षाकी अगणित सीढ़ियोंपर चढ़ता और फिसलता जा रहा है। अनेक पदों और उपाधियोंको महत्त्वाकांक्षाके लिये ही विशेष प्रयत्नसे ग्रहण करता है तथा अधिकाधिकके लिये उनका त्याग कर देता है। देश-कुल-जाति-सेवाके पीछे महत्त्वाकांक्षा ही स्थूल और सूक्ष्म रूपमें छिपी रहती है।

एक व्यक्ति मानके लिये ही ऊँचे स्वर्ण-सिंहासनपर बैठनेका पुण्य प्राप्त करता है। दूसरा श्रेष्ठ गुण, विद्या और योग्यतासे सम्पन्न होकर भी सबके पीछे बैठकर यह सिद्ध करता है कि मुझे अभिमान नहीं है, उसे अयोग्य स्थानपर बैठे देखकर तथा निरभिमानी समझकर लोग उच्च मान देते हैं। त्यागी, तपस्वी, विरक्त और भक्तका वेष त्याग, तप, विरक्ति और भक्ति पूर्ण न होनेके पहले ही, धारण कर लेना मानके लिये महत्त्वाकांक्षा नहीं तो और क्या है? जिन पुरुषोंने कंचन और कामिनीका बड़ी सरलतासे त्याग किया है, वे ही अभिमानवश महत्त्वाकांक्षाके लिये रागी एवं द्वेषी होते दीख पड़ते हैं। अभिमानी जीवमें कभी-कभी सीमित महत्त्व-प्राप्तिका इतना लोभ बढ़ता है कि सद्गुणसम्पन्न होकर भी वह आसुरी चेहरा लगाकर अपने ही साथियोंको धमकाता रहता है, खूनसे हाथ रँग लेता है।

प्राय: अधिकांश लोग महत्त्वाकांक्षाके लिये इधर-उधर दौड़ रहे हैं। साधकोंकी साधना, त्यागियोंका त्याग, संन्यासियोंका संन्यास, पण्डितोंका पाण्डित्य, विरक्तोंकी विरक्ति, तपस्वियोंका तप, हंसोंकी नीर-क्षीर-विवेकी ज्ञान-शक्ति महत्त्वाकांक्षा-पूर्तिके लिये ही बहुत दूरतक है। प्राय: त्यागके मूर्तिमान् स्वरूपसे बने हुए साधु, संन्यासी या विरागीको परम शान्ति अथवा ईश्वरके साक्षात्कारकी प्रतीक्षा इतनी नहीं होती, जितनी रईस या धनी शिष्यको पानेकी उत्कण्ठा होती है। बुद्धिमान् चतुर पुरुष रईसों, राजाओं और पदाधिकारियोंके सम्पर्कमें जाकर मान तथा महत्त्वाकांक्षामें अपने-आपको विरक्त सिद्ध करनेके लिये अच्छी-अच्छी युक्तियोंका प्रश्रय लेते हैं। इस कार्यके लिये उन्हें दोषी ठहराना उचित नहीं दीख पड़ता है। जबतक अहं है, तबतक मानकी भूख रहेगी ही। जबतक मानकी इच्छा है, तबतक महत्त्वाकांक्षा है, मानपर विजय पाना ही वास्तविक आत्मविजय है। मनुष्यकी महत्त्वाकांक्षा ही उसकी सद्गति और परम गतिका कारण है। यदि महत्त्वाकांक्षा न होती तो मनुष्यने सीमितके भीतर ही स्वतन्त्र मानको सब कुछ मान लिया होता, जीवनकी प्रगति रुक जाती। मान और महत्त्वाकांक्षाका होना अनुचित और अनिष्टकर नहीं है, अनुचित है सीमित मान या महत्त्वाकांक्षाको पाकर भोगी बनना।

मानवकी गति मानके रससे अवरुद्ध हो जाती है।

महत्त्वको प्राप्तकर मानमें रस लेना ही दरिद्रता है। उसका त्याग करना उदारता है। वस्तुके संगसे अहंकार और व्यक्तिके आगे अभिमान सिद्ध होता है। गति, सद्‌गति और परम गतिका अर्थ यह है कि अहं पहलेकी साधारण वस्तुका संग छोड़कर दैवी गुण और स्वभाववाली वस्तुका संगी बने और प्रपंची व्यक्ति बदलते हुए दैवी प्रकृतिसम्पन्न व्यक्तिके आगे सम्मानके योग्य बने, इससे दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी, यही है गतिमें सद्‌गति। ईश्वरके चरणोंपर अहंको समर्पित कर देना परम गति है।

अहंकारकी प्रगतिकी पराकाष्ठा आत्ममय होनेमें है और मानके लिये महत्त्वाकांक्षाकी पराकाष्ठा परमात्मासे तन्मय हो जानेमें है। अहंकारकी गति आत्मासे आरम्भ होती है और उसीमें लीन हो जाती है। महत्त्वाकांक्षाकी गति व्यक्ति-संयोगसे आरम्भ होती है और महत्तत्त्वके योगमें लीन हो जाती है। यही परम शान्ति तथा निर्वाण-पदकी सिद्धि है। इस सिद्धिके लिये आरम्भमें मान और महत्त्वाकांक्षाकी आवश्यकता पड़ती है। पर उनका भोग करना बाधक है, उनके रसभोगका त्याग करते रहना चाहिये। त्याग परम सिद्धिका मूल है। त्यागकी प्रतीति न होना ही वास्तविक त्याग है। त्यागकी प्रतीति तभी न होगी, जब अधिकाधिक उच्च और सर्वोपरि महत्-पदकी प्राप्ति ही जीवनका लक्ष्य होगा। इस लक्ष्यका पूरा हो जाना साधनाका अन्त है, आत्मसाक्षात्कार अथवा आत्मविजय है।

बोध-कथा—

आश्रितका त्याग उचित नहीं

पाण्डवोंके स्वर्गारोहणके समयकी कथा है। महाराज युधिष्ठिर हिमालयपर चढ़ने गये। द्रौपदी तथा उनके चारों भाई एक-एक करके बर्फमें गिरकर मर गये। किसी प्रकार साथका एक कुत्ता बच गया था, वही धर्मराजका अनुसरण करता जा रहा था। उसी समय देवराज इन्द्र रथ लेकर महाराज युधिष्ठिरके सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने महाराज युधिष्ठिरको रथपर बैठनेके लिये आज्ञा दी। धर्मराजने कहा—'यह कुत्ता अबतक मेरे साथ चलता आ रहा है। यह भी मेरे साथ स्वर्ग चलेगा।' देवराज इन्द्रने कहा—'नहीं, कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गमें स्थान नहीं है। तुम कुत्तेको छोड़ दो।' इसपर महाराज युधिष्ठिरने कहा—'देवराज! आप यह क्या कह रहे हैं? भक्तोंका त्याग करना ब्रह्महत्याके समान महापातक बतलाया गया है। इसलिये मैं अपने सुखके लिये इस कुत्तेको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता। डरे हुएको, भक्तको, 'मेरा कोई नहीं है'—ऐसा कहनेवाले शरणागतको, निर्बलको तथा प्राणरक्षा चाहनेवालेको छोड़नेकी चेष्टा मैं कभी नहीं कर सकता, चाहे मेरे प्राण भी क्यों न चले जायँ। यह मेरा सदाका दृढ़ व्रत है। यह सुनकर देवराज इन्द्रने कहा—'हे युधिष्ठिर! जब तुमने अपने भाइयोंको छोड़ दिया, प्यारी धर्मपत्नी द्रौपदीको छोड़ दिया, फिर इस कुत्तेपर तुम्हारी इतनी ममता क्यों है?' धर्मराजने उत्तर दिया—'देवराज! उन लोगोंका त्याग मैंने उनके मरनेपर किया है, जीवित-अवस्थामें नहीं। मरे हुएको जीवनदान देनेकी क्षमता मुझमें नहीं है। मैं आपसे फिर निवेदन करता हूँ कि शरणागतको भय दिखलाना, स्त्रीका वध करना, ब्राह्मणका धन हरण कर लेना और मित्रोंसे द्रोह करना—इन चार प्रकारके पापोंके बराबर केवल एक भक्तके त्यागका पाप है, ऐसी मेरी सम्मति है। अतः मैं इस कुत्तेको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता।'

युधिष्ठिरके इन दृढ़ वचनोंको सुनकर साक्षात् धर्म, जो कि कुत्तेके रूपमें विद्यमान थे, प्रकट हो गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'युधिष्ठिर! कुत्तेको तुमने अपना भक्त बतलाकर स्वर्गतकका परित्याग कर दिया। अतः तुम्हारी समता कोई भी स्वर्गवासी नहीं कर सकता। तुमको दिव्य उत्तम गति मिल चुकी।' इस प्रकार साक्षात् धर्मने तथा उपस्थित इन्द्रादि देवताओंने महाराज युधिष्ठिरकी प्रशंसा की और वे प्रसन्नतापूर्वक महाराज युधिष्ठिरको रथमें बैठाकर स्वर्गमें ले गये।

साधकोंके प्रति—

कर्तव्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

❀ मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें अपने कर्तव्यका पालन कर सकता है। कर्तव्यका यथार्थ स्वरूप है—सेवा अर्थात् संसारसे मिले हुए शरीरादि पदार्थोंको संसारके हितमें लगाना।

❀ अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले मनुष्यके चित्तमें स्वाभाविक प्रसन्नता रहती है। इसके विपरीत अपने कर्तव्यका पालन न करनेवाले मनुष्यके चित्तमें स्वाभाविक खिन्नता रहती है।

❀ साधक आसक्तिरहित तभी हो सकता है, जब वह शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिको 'मेरी' अथवा 'मेरे लिये' न मानकर केवल संसारकी और संसारके लिये ही मानकर संसारके हितके लिये तत्परतापूर्वक कर्तव्य-कर्मका आचरण करनेमें लग जाय।

❀ वर्तमान समयमें घरोंमें, समाजमें जो अशान्ति, कलह, संघर्ष देखनेमें आ रहा है, उसमें मूल कारण यही है कि लोग अपने अधिकारकी माँग तो करते हैं, पर अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते।

❀ कोई भी कर्तव्य-कर्म छोटा या बड़ा नहीं होता। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा कर्म कर्तव्यमात्र समझकर (सेवाभावसे) करनेपर समान ही है।

❀ जिससे दूसरोंका हित होता है, वही कर्तव्य होता है। जिससे किसीका भी अहित होता है, वह अकर्तव्य होता है।

❀ राग-द्वेषके कारण ही मनुष्यको कर्तव्य-पालनमें परिश्रम या कठिनाई प्रतीत होती है।

❀ जिसे करना चाहिये और जिसे कर सकते हैं, उसका नाम 'कर्तव्य' है। कर्तव्यका पालन न करना प्रमाद है, प्रमाद तमोगुण है और तमोगुण नरक है—**'नरकस्तमउन्नाहः'** (श्रीमद्भा० ११। १९। ४३)।

❀ अपने सुखके लिये किये गये कर्म 'असत्' और दूसरेके हितके लिये किये गये कर्म 'सत्' होते हैं। असत्-कर्मका परिणाम जन्म-मरणकी प्राप्ति और सत्-कर्मका परिणाम परमात्माकी प्राप्ति है।

❀ अच्छे-से-अच्छा कार्य करो, पर संसारको स्थायी मानकर मत करो।

❀ जो निष्काम होता है, वही तत्परतापूर्वक अपने कर्तव्यका पालन कर सकता है।

❀ दूसरोंकी तरफ देखनेवाला कभी कर्तव्यनिष्ठ हो ही नहीं सकता, क्योंकि दूसरोंका कर्तव्य देखना ही अकर्तव्य है।

❀ गृहस्थ हो अथवा साधु हो, जो अपने कर्तव्यका ठीक पालन करता है, वही श्रेष्ठ है।

❀ अपने लिये कर्म करनेसे अकर्तव्यकी उत्पत्ति होती है।

❀ अपने कर्तव्य (धर्म)-का ठीक पालन करनेसे वैराग्य हो जाता है—***'धर्म तें बिरति'*** (मानस ३। १६। १)। यदि वैराग्य न हो तो समझना चाहिये कि हमने अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं किया।

❀ अपने कर्तव्यका ज्ञान हमारेमें मौजूद है। परंतु कामना और ममता होनेके कारण हम अपने कर्तव्यका निर्णय नहीं कर पाते।

❀ चारों वर्णों और आश्रमोंमें श्रेष्ठ व्यक्ति वही है, जो अपने कर्तव्यका पालन करता है, जो कर्तव्यच्युत होता है, वह छोटा हो जाता है।

❀ संसारके सभी सम्बन्ध अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये ही हैं, न कि अधिकार जमानेके लिये। सुख देनेके लिये हैं, न कि सुख लेनेके लिये।

❀ एकमात्र अपने कल्याणका उद्देश्य होगा तो शास्त्र पढ़े बिना भी अपने कर्तव्यका ज्ञान हो जायगा, परंतु अपने कल्याणका उद्देश्य न हो तो शास्त्र पढ़नेपर भी कर्तव्यका ज्ञान नहीं होगा, उलटे अज्ञान बढ़ेगा कि हम जानते हैं।

भगवान् श्रीरामके दत्तक पुत्र

(श्रीगोविन्दप्रसादजी मिश्र)

विचित्र शीर्षक देखकर पाठक चौंके बिना नहीं रहेंगे। रामने किसे दत्तक पुत्र बनाया और क्यों? उसके लिये प्रमाण क्या है?

भगवान् भक्तके वशमें होते हैं और उन्हींकी इच्छा पूरी करते आये हैं। यह भी उसी कृपाका उदाहरण है, जो मानसमें ढूँढ़नेसे मिल जाता है।

वीरवर वाली प्राण त्यागनेको तैयार थे, भगवान्‌को सामने देखकर प्रश्न किया—

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

भगवान् समुचित उत्तर न दे सके। कहा तुझे कौन मारता है—

अचल करौं तनु राखहु प्राना।

इतना कहकर भगवान्‌ने—

बालि सीस परसेउ निज पानी।

स्वाभिमानी वाली, सुन्दर अवसर पा कहने लगे—

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।

जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥

जन्म-जन्म मुनि यत्न करते हैं, अन्त समय राम नहीं कह पाते—वे समक्ष हैं—

बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा?

तनका मुझे मोह नहीं, माँगूँगा यह कि अब जिस-जिस योनिमें कर्मवश जाना पड़े, आपके श्रीपदसे अनुराग रहे—

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।

दूसरी चाह और है, वह यह कि मैं तो श्रीचरणके समक्ष होते ही मुक्त हो गया। मेरे तनसे उत्पन्न मेरा तनय आज अनाथ हो रहा है, इसकी बाँह पकड़ इसे शरणागति दे, आश्रय दे, सनाथ करके अपना दास बनाइये—

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥

इस तरह तन और तनय दोनोंका निपटारा कर—

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

शरीरको छोड़ भगवत्-धामको वालीने प्रयाण कर दिया।

ताराको इस दत्तक-संस्कारकी प्राथमिक क्रियाका पता न होनेके कारण ही वह रुदन करते समय कह रही थी—

अंगद कहँ कछु कहन न पायउ।

अंगदके लिये वाली वह बात कहकर गया था, जो कोई पिता कभी नहीं कहता। मृत्युलोकमें तो पिताकी मुक्तिका साधन पुत्रको माना गया है, परंतु यह एक ही उदाहरण था, जहाँ अपनी सद्‌गतिके साथ एक भक्त अपने पुत्रको भी भगवान्‌के समर्पणकर उनकी गोदमें बैठा गया था।

अंगदने तत्काल युवराजपद पाया, भगवान् स्वयं तो युवराज नहीं बन सके थे; परंतु एक आश्रितको उन्होंने युवराज बना दिया।

उस दत्तक पुत्रका उपयोग किन महत्त्वपूर्ण समयों, अवसरोंपर किया गया, यह भी अध्ययनकी वस्तु है।

सीता-खोज-कमीशनके चेयरमैन बनाये गये थे युवराज अंगद और उक्त कार्यको इन्होंने सफल बनाया।

त्रेतामें जिस कार्यको अंगद सम्पन्न करनेको भेजे गये, वह महत्त्वपूर्ण कार्य भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं द्वापरमें किया था।

जब सभामें प्रस्ताव रखा गया कि लंकामें सन्धि-

प्रस्ताव लेकर अंगद दूतकी तरह जाय, तो सर्वसम्मतिसे स्वीकृति दी गयी। भगवान्‌ने चलते समय विश्वास प्रकट करते हुए कहा—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

वीर अंगद—सबको सिर नवा प्रभुचरणकी प्रभुताको हृदयमें रखकर चले। और—

जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ—

इस तरह पहुँचे—

यहाँ केवल दो बातें विशिष्ट कीं, जिनसे उनके बुद्धि-बलका प्रमाण मिलता है—

हाथका पटकना और पदका रोपना

सारी सभा जमी हुई थी। बात-ही-बातमें हाथ इस जोरसे पटके कि अवनि डोल उठी, रावणसहित सब अपदस्थ हो गये।

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥

रावणके मुकुट गिर पड़े—उनमेंसे चारको उठाकर ऐसे फेंका कि भगवान्‌के समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—जा खड़े हुए।

योगी कुयोगीकी राज्यश्री छीनकर आकाशमार्गसे भेज रहा था। साधारण मनुष्य फेंकता दस-पाँच हाथ दूर गिरते—

दूसरी कृति भी—सभामें जब कि इस शर्तपर पैर रोपकर खड़े हो गये और कहा मेरा पैर कोई भी सरका देगा तो—
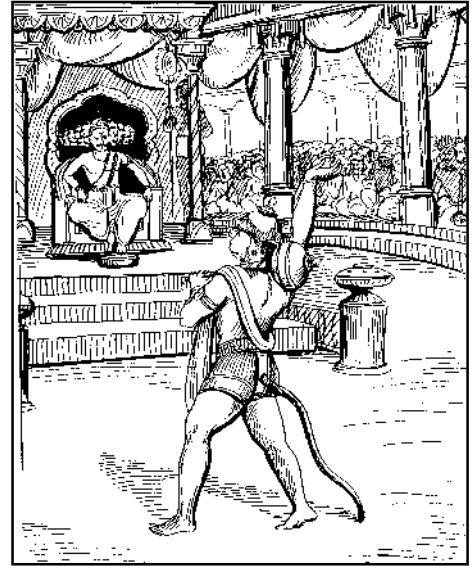
'फिरहिं रामु सीता मैं हारी।'

प्रयत्नके बाद जब कोई तिलभर भी न सरका सका—बलकी परीक्षा हो चुकनेपर बुद्धिकी परीक्षा हुई।

रावण सिंहासनसे उठा और नीचे झुककर पैर छूनेको ही था कि बोले—

'मम पद गहें न तोर उबारा।'

तुम्हारा उद्धार—

'सादर जनक सुता करि आगें।'
दसन गहहुँ तृन कंठ कुठारी।

और प्रणतपाल रघुवंशमणिके सामने—

त्राहि माम् त्राहि माम्—चिल्लाते चलो।

भगवान् आर्त वचन सुनकर तुम्हें अभय कर देंगे।

रावण खिसियाकर, अपनी राज्यमणि गँवाकर, अश्वत्थामा-सा घाव लेकर बैठ गया।

बुद्धि और बलकी अनोखी साहसभरी क्षमताकी ऐसी कहानी मानसमें और किसकी हो सकती थी?

अयोध्यामें भगवान्‌का राजतिलक हो गया। सबको अपने-अपने घर जानेके आदेश हुए। लक्ष्मणजीने विभीषणको, भरतजीने सुग्रीवको, नल-नीलको स्वयं

भगवान्‌ने वस्त्राभूषण पहना दिये और विदा किया। अंगद बैठे रहे, नहीं बोले—प्रीति जानि प्रभु भी चुप रहे।

सबके चले जानेके बाद अंगदने भगवान्‌को प्रणाम किया और सजलनयन होकर बोले—

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥

हे दीनानाथ! मेरे पिता बाली मरते समय आपके अंचल, गोदमें मुझे डाल गये थे।

असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही।

ऐसी करुणाभरी विनयसे भगवान्‌के नयन सजल हो गये। सिवा हृदयसे लगा लेनेके भगवान् कुछ न कह सके। दोनोंके नेत्रोंसे जलधार बह रही थी और सब स्तब्ध थे।

भगवान्‌को स्मरण आया, मैं वनमें था, अभी दत्तक विधि अधूरी रही है। दत्तक लेनेपर तो पिता अपने वस्त्राभूषण उतारकर पहनाता है। केवल पिताओंके आदान-प्रदानसे विधि पूरी नहीं होती।

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।

किस भाग्यशालीको मानसमें ऐसा बड़भाग उपलब्ध हुआ। अपने वसन, निज उर माला, मणिमुक्ता, सिरका पाग—सब सम्पदा सौंप खुद उघारे हो गये—क्या दत्तक-संस्कारकी अनोखी झाँकी है। अंगद राम बनकर खड़े हैं, राम सब कुछ सौंपकर रीते खड़े हैं। भगवत्-कृपाकी इति अभी भी नहीं हुई—

इस तरह राजा रामका दत्तक पुत्र बालितनय, युवराज अंगद बिदा हुआ।

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥

किसीको यह सम्मान नहीं उपलब्ध हुआ था। यह पहला और अन्तिम रामराज्यका अधिकार-प्रदान था।

बार बार कर दंड प्रनामा।

दत्तक पुत्र अंगद अयोध्याके राजमार्गसे रामके वस्त्राभूषण धारण किये पंचानन-पुत्रकी भाँति चले जा रहे थे। अयोध्यावासी दो राम देख बलिहार हो रहे थे, देव पुष्पवर्षा कर रहे थे। एक बार सबको भ्रम हो जाता था, कुछ किसीकी समझमें न आता था। तुलसीके शब्द इस स्थलपर हैं—

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥

और यह था केवल भारतीय दत्तक-विधानका दूसरा संस्कार, जो किष्किन्धामें नहीं हुआ और अयोध्यामें सम्पन्न किया गया—तनकी सद्‌गतिके अनन्तर अवशेष तनयका सफल जीवन, मुकुटके बदले मुकुट, राज्यश्रीके बदले राज्यश्री देकर सम्पन्न किया। राम-विलोकनि, बोलनि, चलनी और हँसिमिलनीको बार-बार स्मरण करते हुए गद्‌गद होते रामके दत्तक-पुत्र अंगद किष्किन्धाको जा रहे हैं—***'चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी।'***

'रे मन! तू क्यों घबराता है'

(श्रीहरि ओमकुमारजी श्रीवास्तव)

रे मन! तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय तेरे।
वे ही त्रिभुवनके स्वामी हैं, फिर व्यर्थ की चिन्ता काहे करे॥
दु:खसे क्यों विचलित होता है, दु:ख प्रभुकी याद दिलाता है।
दु:खका अनुभव कम करना हो, तो हरिका सुमिरन क्यों न करे।
रे मन! तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय तेरे॥
जगके भौतिक सुख तो, हैं अनित्य, फिर उनको प्रभुसे क्यों माँगे।
जो शाश्वत और अनादि सुख हैं, तू उनकी याचना क्यों न करे।
रे मन! तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय तेरे॥
तू काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के बस में ही क्यों रहता है।
यदि इनसे मुक्ति पानी है, क्यों हरिकी शरण न ग्रहण करे।
रे मन! तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय तेरे॥

गीतामें जीवन-दृष्टि और व्यक्तित्व-विकासके सूत्र

(श्रीप्रभुनारायणजी श्रीवास्तव)

हमारे जीवनकी हर घटना अनेक दृश्य एवं अदृश्य शक्तियोंसे प्रभावित होती है। किसी भी एक कारणकी इसमें निर्णायक भूमिका नहीं रहती। हमें ऐसा प्रतीत हो सकता है कि मात्र एक कारण जैसे मेरा पुरुषार्थ अथवा मेरी दुर्बलताके कारण ही सफलता या असफलता मिलती है। वास्तवमें अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणोंके सम्मिलित प्रभावसे ही किसी घटनाकी सफलता या असफलता घटित होती है। मात्र किसी एक कारणको सफलता या असफलताके लिये जिम्मेवार मानना अति सरलीकृत मीमांसा कही जायगी। इसे हम निम्न उदाहरणसे समझ सकते हैं—

एक छोटी-सी घटना है—पत्तेका हिलना। पत्ता अहंकारवश यह समझ सकता है कि वह अपनी इच्छासे हिलता है, जबकि स्थिति बिलकुल भिन्न है। पत्ता हिलता तभी है, जब हवा चलती है और हवा चलती तभी है, जब वायुमण्डलमें दबाव-परिवर्तन होता है। दबाव-परिवर्तन तभी होता है, जब तापक्रममें परिवर्तन होता है। तापक्रममें परिवर्तन तभी होता है, जब पृथ्वीका हिस्सा सूर्यके निकट या दूर होता है और फिर इस ब्रह्माण्डमें एक नहीं अरबों सूर्य हैं, अनेक ग्रह-नक्षत्र हैं। भूगर्भमें भी सदा छोटे-बड़े विस्फोट होते रहते हैं। इन सबका परिणामी प्रभाव तापक्रममें परिवर्तनका कारण होता है अर्थात् पत्ता तभी हिलता है, जब ब्रह्माण्ड हिलता है। पत्तेका हिलना अकेली निरपेक्ष घटना नहीं है। प्रकृतिकी इस अन्तर्सम्बद्धताकी अनुभूति हमारे जीवनकी दृष्टि बदलनेमें सहायक हो सकती है अर्थात् किसी भी फलके लिये अपने अहंकारमें वृद्धि अथवा कुण्ठामें वृद्धि करना अज्ञानताका परिचायक है। गीता सुनहरे 'मध्यमार्ग' की प्रेरणा देती है अर्थात् न तो अहंकार और न ही कुण्ठा। इसके लिये योगस्थ शब्दका प्रयोग किया गया है। कई बार इसका गलत अर्थ लगाया जाता है अर्थात् भाग्यके सहारे बैठकर भाग्यवादी कहकर इसकी आलोचना की जाती है। वास्तवमें अपने सम्पूर्ण पुरुषार्थको परमात्माके साथ जोड़नेसे व्यक्तिकी क्षमतामें अनन्त गुना वृद्धि होती है। वह आलसी नहीं होता है, बल्कि परम पुरुषार्थी होता है। इसके जीवनमें जितनी मात्रामें अहंकारशून्यता आती है, परमात्म-तत्त्व उतना ही अधिक मात्रामें अवतरित होता है। फलके प्रति आसक्ति कम होनेसे कर्मकी गुणवत्ता बढ़ती जाती है।

उपर्युक्त अवस्थाकी प्राप्ति मात्र किताबी न होकर व्यावहारिक बने, इसके लिये भगवान्ने कार्यक्रम भी बतलाया है। छठे अध्यायमें इस संतुलन योगके लिये संतुलित आहार, संतुलित विहार, संतुलित कर्म, चेष्टा एवं निद्राकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

स्थूल प्रयास, जिससे शरीर संतुलित हो सके, इसके बाद मनके संतुलनके लिये भी कार्यक्रम दिया गया है। इस कार्यक्रमकी शृंखलाका वर्णन करते हुए भगवान् गीता (६। ११—१३)-में कहते हैं—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

'शुद्ध भूमिमें कुश, मृगछाला और वस्त्र (शरीरमें उत्पादित विद्युत् ऊर्जाके संरक्षणके लिये यह कुचालक है, जिससे ऊर्जाका भूमिमें अन्तरण न हो)-का आसन हो, जो न बहुत नीचा और न बहुत ऊँचा हो, अपने आसनका स्थिर स्थापनकर उसपर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्त:करणकी शुद्धिके लिये साधक योगका अभ्यास करे। काया, सिर और गलेको समान एवं अचल करके, स्थिर होकर अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ अभ्यास करे।'

शरीर, मन और आत्माके संतुलनके लिये जगह-जगह गीतामें अभ्यास करनेकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। सतत अभ्याससे यह संतुलन प्राप्त होता है। इसमें जल्दबाजी नहीं है। भगवान् कहते हैं—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

'क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको आत्मकेन्द्रितकर मनको चलायमान होनेसे रोके।'

पूर्वजन्मके संचित संस्कारके कारण कुछ लोगोंको यह समत्व योग जल्दी प्राप्त हो सकता है और कुछको विलम्बसे। यह स्तर-भेदके कारण होता है।

अभ्याससे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षमताका उत्तरोत्तर विकास होता है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि हमारे अन्दर जितनी भी क्षमता है, उसमेंसे मात्र ५से १० प्रतिशत क्षमताके उपयोगसे दैनन्दिन जीवनमें हमारा काम चल जाता है। शेष ९० प्रतिशत क्षमता अनुपयोगी बनी रहती है। राममूर्तिकी छाती और हमारी छातीमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है, लेकिन राममूर्तिकी छातीसे कार निकाली गयी, कुछ नहीं हुआ उन्हें। राममूर्तिसे जब पूछा गया, उन्होंने कहा कि इसमें कोई राज नहीं है। आप भी कर सकते हैं। राज वही है जो कि कारके टायर-ट्यूबमें होता है। साधारण-सी रबरकी ट्यूबमें हवा भरनेसे बड़े-से-बड़े ट्रकको वह चला लेता है। वही काम हम अपनी छातीमें विशेष अनुपातमें हवा भरकर कर लेते हैं। इस प्रकार अपनी शारीरिक क्षमताका विकास हम कर सकते हैं।

योग सोयी हुई ऊर्जाका जागरण करता है। बिना ऊर्जाके कोई भी यात्रा सम्भव नहीं है। हाँ, ऊर्जा उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होती जाती है। यान्त्रिक ऊर्जा, फिर विद्युत् ऊर्जा, फिर प्रकाश ऊर्जा, ध्वनि ऊर्जा—इस प्रकार धीरे-धीरे ऊर्जा सूक्ष्मतम होती जाती है।

प्राणायामके माध्यमसे सुप्त ऊर्जाको जाग्रत् किया जाता है, जिससे हमारी यात्रा हो सके। बिना ऊर्जाके कोई यात्रा नहीं हो सकती है। अगर हम यात्रा कर रहे हैं तो उसके रोकनेके लिये उसकी दिशा बदलनेके लिये भी ऊर्जा चाहिये।

हमारे अन्दर भी कई ऊर्जा-चक्र हैं। योग इसे विभिन्न नामोंसे पुकारता है। इन शक्ति बिन्दुओंके जागरणके लिये ही अनेक प्रकारके प्राणायामका प्रयोग ऋषियोंद्वारा किया गया है। इस प्रकार शारीरिक शक्तिका जागरण योगासन एवं व्यायामसे, मानसिक शक्तिका जागरण प्राणायामसे और चित्तकी शक्तिका जागरण ध्वनि तरंगोंसे अर्थात् मन्त्रोच्चारणद्वारा सम्भव है। ये सभी अलग-अलग प्रकारके योग हैं—सबकी अलग-अलग तकनीक है।

ध्वनि-ऊर्जाके प्रभावसे हम परिचित हैं। इन दिनों 'ध्वनि प्रदूषण' से हो रहे कुप्रभावसे भी हम परिचित हैं। योगके द्वारा इसके रचनात्मक प्रयोगपर ऋषियोंने शोध किया था। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीकी डिलाबार प्रयोगशालामें पॉप म्यूजिक एवं शास्त्रीय संगीतके प्रभावका अध्ययन किया गया, जिसके अन्तर्गत फसलोंकी एक क्यारीको पॉप म्यूजिक एवं दूसरेको शास्त्रीय म्यूजिक सुनाया गया। शास्त्रीय म्यूजिक सुननेवाली क्यारीका उत्पादन एवं गुणवत्ता पॉप म्यूजिक सुननेवाली क्यारीसे कई गुणा अधिक हुआ। भारतीय ऋषियोंने 'मन्त्र-शक्ति' पर बहुत शोध किया है और चित्तवृत्तियोंपर उनके प्रभावका भी अनुमान किया है। बार-बार मन्त्र-जापसे चित्तकी वृत्तियाँ शान्त होती हैं, और इससे शुभका जन्म होता है।

गुरु-परम्परामें मन्त्र-दीक्षा एवं मन्त्र-जापकी प्रेरणा दी जाती है। अपने-अपने अनुभूत सत्यके आधारपर मन्त्र-द्रष्टा ऋषियोंने शिष्योंको अलग-अलग प्रकारसे दीक्षा दी है, जिससे व्यक्तिके रूपान्तरणमें गति आती है। ध्वनि ऊर्जाके प्रभावके सम्बन्धमें एक अर्वाचीन घटनाका उल्लेख करना समीचीन होगा, जब मुसोलिनीने संगीत-विशारद श्रीओंकारनाथ ठाकुरसे डाइनिंग टेबुलपर

कृष्णकी बाँसुरीके जादुई प्रभावपर व्यंग्योक्ति की थी। श्रीकृष्णकी बाँसुरीसे गायें दूध देती थीं, मयूर नाचते थे, पक्षी चहचहाने लगते थे—मुसोलिनीने इसे कोरा अन्धविश्वास कहा था। तुरंत ओंकारनाथ ठाकुरने टेबलपर बैठे-बैठे काँटे, चम्मचसे जो स्वर लहरियाँ निकालीं, उससे मुसोलिनीका सर झूमने लगा—टेबलसे ही उसकी टकराहट इतनी तेज हो गयी कि वह लहूलुहान हो गया। फिर ओंकारनाथने अपना संगीत बन्दकर उसे राहत दी। मुसोलिनीने अपनी आत्मकथामें यह लिखवाया है कि मैंने जो कृष्णका मजाक बनाया था, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। पश्चिममें अब 'साउण्ड-इलेक्ट्रोनिक्स' पर बहुत शोध हो रहा है। ध्वनिशास्त्र चित्तके रूपान्तरणकी अद्‌भुत कुंजी है, जिसकी खोज हजारों वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियोंने की थी। भगवान् गीतामें 'जप-यज्ञ' को अपना ही स्वरूप बताते हैं—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**…' यज्ञोंमें मैं जप-यज्ञ हूँ अर्थात् जपके द्वारा ध्वनि-तरंगोंसे आत्मा-परमात्माके द्वैतको हटानेमें सर्वाधिक सहायता मिलती है।

फिर विभिन्न ऋषियोंद्वारा खोजे गये मन्त्रों में 'ॐ' की ध्वनि-तरंगको भगवान्‌ने सर्वश्रेष्ठ माना है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।

(गीता ८।१३)

'ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है।'

'ॐ' की ध्वनि-तरंगपर पूरे विश्वमें शोध हो रहा है। स्वामी विवेकानन्दने शिकागोके अपने प्रवासमें इस शब्दकी सर्वोत्तम ऊर्जाका उल्लेख किया है। यह एक सिद्ध अनुभूति है। कुल मिला-जुलाकर सार-संक्षेप यह है कि व्यक्तिको पूर्णतः सन्तुलित करनेके लिये शरीर, मन, बुद्धि एवं चित्त-वृत्तियोंको अनुशासित करनेके लिये विज्ञानसम्मत पद्धतिका गीतामें वर्णन किया गया है। इसके सतत अभ्याससे धीरे-धीरे व्यक्तिका रूपान्तरण होता है और पुरुष परम सुखको प्राप्त होता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

'पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करता हुआ आत्मा और परमात्माके अभेद स्वरूपको प्राप्तकर आनन्दका अनुभव करता है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनका लक्ष्य परम सुख, परमानन्दकी प्राप्ति ही है।'

व्यक्तित्व-विकासकी पहली शर्त है—जीवन-उद्देश्यका निर्धारण। इसके लिये मनुष्यको अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्तिको ध्यानमें रखना आवश्यक है। बिना इसको ध्यानमें रखकर मात्र भौतिक चकाचौंधसे प्रभावित होकर जीवन-उद्देश्यके निर्धारणसे व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है, कार्यमें सन्तोष नहीं मिलता और समाजको भी उस व्यक्तिके प्रकृतिजन्य विशेष गुणोंके लाभसे वंचित रहना पड़ता है। अर्जुन भी जब अपनी प्रकृतिकी उपेक्षाकर संन्यास-मार्गका अवलम्बनकर युद्धभूमिसे पलायन करना चाहता है एवं भ्रमित होकर अपने जीवन-उद्देश्यको ही भूल जाता है, तब भगवान् अर्जुनको सावधान करते हुए गीता (३।३३)-में कहते हैं—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

'सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है, फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा।'

अपनी मूल प्रकृतिको पहचानने एवं तदनुसार जीवनके उद्देश्यका निर्धारण करनेसे व्यक्तित्वका संतुलित विकास होता है और समाजको भी इसका लाभ मिलता है। फिर पूरी गीतामें अर्जुनका मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक उपचार करनेके बाद अठारहवें अध्यायके ५९वें श्लोकमें उसके खण्डित व्यक्तित्व हो जानेके खतरेकी ओर भगवान् सावधान भी करते हैं—

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥

'जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह मान रहा

है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि तेरा यह स्वभाव तुझे जबरदस्ती युद्धमें लगा देगा।'

अर्जुन कुछ दिनोंतक जंगलमें तपस्या कर सकता है, किंतु उसकी मौलिक प्रकृतिका झोंका जब भी आयेगा, वह युद्धके लिये प्रवृत्त हो जायगा। जैसे अगर उसे अपने भाई या स्वजनकी हत्याका समाचार जंगलमें मिल जाय या कोई शेर, सिंह ही जंगलमें उससे टकरा जाय तो उसका क्षत्रियत्व बरबस उसे युद्धमें प्रवृत्त कर देगा। भगवान् अर्जुनको प्रेमपूर्वक समझाते हैं—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।

(गीता १८। ४८)

'हे कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्मको नहीं त्यागना चाहिये।'

इस प्रकार जीवन-लक्ष्यके निर्धारणमें क्या सावधानी बरतनी चाहिये, भगवान्ने इसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित कराया है। अब प्रश्न यह खड़ा हुआ कि अपनी प्रकृतिको कैसे पहचाना जाय? वास्तवमें आज या किसी भी युगमें अपनी प्रकृतिको पहचानकर जीवन-उद्देश्यका निर्धारण बहुत कठिन है। इन्द्रियाँ एवं उसकी विषयासक्ति इतनी प्रबल है कि जीवात्मा अपने स्वामीपनको भूल जाता है। किसी घरका नौकर अगर प्रबल और प्रभावी हो जाय तो उस घरके मालिककी जो स्थिति होती है, वैसी ही स्थिति उस व्यक्तिकी होती है, जिसकी इन्द्रियाँ उसका संचालन करती हैं। इन्द्रियोंका विषय-सुखमें आकर्षण स्वाभाविक है, किंतु किस इन्द्रियद्वारा कितनी मात्रामें किस विषयका सेवन किया जाय और किस विषयमें इन्द्रियोंका उपयोग उसके हितमें होगा, इसका निर्णय तो उसके स्वामी (जीवात्मा)-को ही करना चाहिये। अत: अपनी आत्मशक्तिको बढ़ाना आवश्यक है, जिससे हमारा 'स्वामित्व' स्थापित हो। भगवान् कहते हैं— '**उद्धरेदात्मनात्मानम्**' 'अपने द्वारा अपना उद्धार करे' (गीता ६। ५)। '**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः**' 'मनुष्य स्वयं अपना मित्र है।' '**बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः**' (गीता ६। ६) 'जिसने स्वयंके द्वारा अपनी इन्द्रियोंपर विजय पायी है, वह अपना मित्र है।'

अपनी मूल प्रकृति जिसके आधारपर हम अपने जीवनका लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं, को पहचाननेके लिये आधुनिक युगमें मनोवैज्ञानिककी सहायता ली जा सकती है। इसके आधारपर हमारे अन्दर छिपी हुई प्रतिभाकी क्षमताको विकसित किया जा सकता है। हम गणितज्ञ बन सकते हैं कि संगीतज्ञ, हम तकनीशियन बन सकते हैं कि साहित्यकार, हम प्रशासनिक अधिकारी बन सकते हैं कि कुशल श्रमिक, हम अर्थशास्त्री बन सकते हैं कि दर्शनशास्त्री—यह एक गहन खोज है। इसके लिये मनोवैज्ञानिक जहाँ सहायक हो सकते हैं, वहीं स्वयं 'ध्यान' के द्वारा भी हम अपनी खोज कर सकते हैं। मेरा स्वयंका अनुभव है कि सतत ध्यानसे, शान्तिपूर्वक स्वयंसे सतत जिज्ञासा एवं समर्पण भावसे अपने अन्दरके ईश्वरको जाग्रत् करनेसे हमें इसका एकदम सटीक उत्तर प्राप्त हो सकता है। इसके लिये बाल्यकालसे ही जागरूकता प्राप्त करनेका अभ्यास आवश्यक है। यह एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है, किंतु हाईस्कूलतक अगर अभ्यास किया जाय, तो बहुत कुछ दिशा मिल सकती है। भगवान् कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

'शरीररूपी यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है।'

भगवान् आगे कहते हैं कि उस अन्तर्यामी परमेश्वरकी शरणमें जानेसे सभी मनोरथ पूरे होंगे। एक बार जीवन-लक्ष्य निर्धारण होनेके बाद उस लक्ष्यके प्रति समर्पण किये बिना व्यक्तित्वका विकास नहीं हो सकता है। आजके युगमें भौतिक लक्ष्यके

साथ-साथ जीवनके पराभौतिक लक्ष्यका निर्धारण दोनों लक्ष्योंको प्राप्त करनेमें सहायक हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि हम व्यावसायिक दृष्टिसे इंजीनियर बनना चाहते हों तो साथमें एक अन्य पराभौतिक रुचि भी विकसित करनी चाहिये। जैसे गायन, भजन, सत्साहित्य पठन, लेखन, वक्तृत्व कलाका विकास, खेल आदि। भौतिक और आध्यात्मिक विकासकी प्रारम्भिक युगलबन्दी बादमें एकीकृत व्यक्तित्व-विकासमें सहायक बन सकती है।

उद्देश्य-निर्धारणके बाद उस उद्देश्यके प्रति एकाग्र समर्पण आवश्यक है। इसके लिये श्रद्धापूर्वक अभ्यासकी आवश्यकता है। जितनी श्रद्धा एवं समर्पण होगा, उतनी मात्रामें सफलता प्राप्त होगी। यह किसी भी प्रकारके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है। मेरा अपना मत है कि जबतक भौतिक आवश्यकताकी पूर्ति एवं वासनाओंकी पूर्तिकी निरर्थकताका स्वयं अनुभव नहीं होता है, तबतक आध्यात्मिक विकासकी बात निरर्थक है और है भी तो टिकाऊ नहीं होती है। इसलिये जागरूक होकर सारे अभ्यास किये जाने चाहिये। निर्धारित लक्ष्यके प्रति समर्पणसे ही प्रगति एवं विकास सम्भव है। जैसे लोहेके टुकड़ेपर बार-बार चुम्बककी रगड़से लोहेके बिखरे अणु सज्जित होकर चुम्बकीय गुणोंसे युक्त हो जाते हैं, वैसे ही उद्देश्यके सतत चिन्तन, मनन एवं अभ्याससे व्यक्तिके संस्कार एवं बुद्धिमें परिवर्तन होता है। व्यक्तित्व-विकासमें बुद्धिका महत्त्वपूर्ण योगदान है और जैसी श्रद्धा रहेगी, वैसी ही बुद्धि होगी। गीता (१७। ३)-में कहा गया है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

'अर्थात् यह पुरुष श्रद्धामय है। जैसी उसकी श्रद्धा होती है, वैसा वह बन जाता है।'

भगवान् गीता (४। ३९)-में कहते हैं—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

'तत्परता एवं एकीकृत इन्द्रियोंसे ही उद्देश्यके प्रति समर्पण एवं समर्पणसे श्रद्धा पैदा होती है। श्रद्धाके गर्भसे बुद्धि तीक्ष्ण होती है और उत्तरोत्तर ज्ञानकी वृद्धि होती है। भौतिक, आध्यात्मिक दोनों प्रकारके विकासके लिये यही सूत्र काम आता है।'

सतत अभ्यास ही सफलताकी कुंजी है। उद्देश्यके ध्यान एवं मननसे समस्त इन्द्रियाँ उसकी प्राप्तिमें सहायक बन जाती हैं। जो इन्द्रियाँ व्यक्तिको खण्डित करती हैं, वे ही इन्द्रियाँ अनुशासित होनेपर व्यक्तित्व-विकासमें सहायक होती हैं।

…वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥

(गीता ६। ३६)

एक विकसित व्यक्तित्ववाले व्यक्तिके २६ लक्षण गीतामें बताये गये हैं। ये हैं—अभय, सत्त्वसंशुद्धि (अन्तःकरणकी निर्मलता), ज्ञानकी प्राप्ति, भौतिक सम्पदाको दान करनेकी प्रवृत्ति, इन्द्रियोंपर पूर्ण नियन्त्रण, स्वार्थरहित कर्म, स्वाध्याय, श्रमसाध्य तप, सहजता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दूसरोंकी निन्दा नहीं करना, प्राणियोंके प्रति दया, लोभ नहीं करना, मधुरता, गलती करनेपर संकोच, निश्चल मन, तेज, क्षमाशीलता, धैर्य, पवित्रता, द्वेष नहीं करना और निरहंकारिता।

गीताके सतत पठन-पाठन, चिन्तन-मननसे धीरे-धीरे व्यक्तित्वका रूपान्तरण होता है—यह मात्र किताबी ज्ञान न होकर, अनुभूत सत्य है। गीता श्लोकके गायन-मात्रसे ध्वनि-तरंगोंका प्रभाव व्यक्तिकी मलिनताओंको साफ करता है, फिर मनन-चिन्तनके साथ अगर इसे गाया जाय तो क्या कहना? एक बार चित्तकी वृत्तियाँ शान्त हुईं, फिर व्यक्तिका विकास तेजीसे होने लगता है। उपनिषद्के ऋषि कहते हैं—'**क्रतुमयोऽयं पुरुषः**'—यह पुरुष संकल्पमय है। जितनी मात्रामें उद्देश्य-प्राप्तिका संकल्प बढ़ता है, उतनी मात्रामें सफलता मिलती है।

प्रसन्नता तो आपके आस-पास ही है

(श्रीबलविन्दरजी 'बालम')

अपने या किसी अन्यद्वारा किये हुए कार्यसे अनुभूत सुख तथा सन्तोषके भावको खुशी कहते हैं। खुशीका अभिप्राय आनन्द, हर्ष, प्रफुल्लता, अनुग्रह, कृपा, सन्तुष्टि, सन्तोष, शान्ति, खिला हुआ, तुष्टि, निर्मलता, स्वच्छ, प्रसादयुक्त आदि समझा जा सकता है। खुशीका भाव मनमें होनेवाली सुखद अनुभूति, उत्साह बढ़ानेवाला भाव इच्छा आदि है।

जिन्दगी एक तराजू है, जिसके एक पलड़ेमें सुख तथा दूसरे पलड़ेमें दुःख है, जो सन्तुलन और असन्तुलनकी क्रियामें प्राप्तियों-अप्राप्तियोंके भारसे नीचे-ऊपर करनेकी अपनी सामर्थ्यको गतिशील रखता है।

जिन्दगी एक ऐसा भव्य सुगन्धित खिला हुआ सुमन है, जिसकी सूक्ष्म कोमल पत्तियोंके नीचे नुकीले खार (काँटे) अपनी चुभनका भयंकर अहसास करवानेमें सदैव ही तत्पर रहते हैं। खूबसूरत सुमन, सुरभि, छुअन तथा काँटेका चुभनमय अहसास ही जीवनकी परिभाषाका सार्थक स्वरूप होता है।

दोस्तो, खुशी किसी भी रूपमें मिले, उसका सीधा सम्बन्ध दिल-दिमाग तथा जिस्मसे होता है। समस्त इन्द्रियाँ खुशीके अहसाससे प्रफुल्लित होती हैं। अनेक बीमारियोंकी एक औषधि है खुशी।

खुशी एक ऐसा सूक्ष्म अहसास है, जिसकी आमदसे समस्त इन्द्रियोंके द्वार (पट) अपने-आप खुल जाते हैं और व्यक्ति मन्त्रमुग्ध हो आनन्दकी क्रियाको पार करते हुए जिस्मके अन्दरूनी (भीतरी) अंगोंको ताजगी, शुद्धता, पूर्णता आदिकी एक अलौकिक शक्ति प्राप्त करता है, जिससे मानवकी लम्बी आयुको चार चाँद लगते हैं। खुशी शरीरको ऊर्जा देती है।

बचपनसे लेकर अन्तिम साँसतक खुशियोंका दारोमदार किसी-न-किसी रूपमें चलता रहता है।

जीवन स्वल्प खुशियोंका अद्भुत भव्य संग्रह है। किसी भी व्यक्तिके पास खुशियोंका सम्पूर्ण आसमान नहीं है कि जब दिल चाहे खुशियोंके आसमानसे सितारा (तारा) तोड़ ले। खुशियाँ तो आपके चहुँओर, आपके आस-पास परोक्ष पड़ी हैं, अलबत्ता, जरूरत है उनको कोशिश, उद्यम, परिश्रम, सहृदयता, कर्मठताकी आँखोंसे ढूँढ़नेकी। जो मानव खुशियाँ ढूँढ़नेमें विशेषज्ञ होते हैं या संवेदनशील होते हैं, वे अपने आस-पाससे खुशी ढूँढ़ लेते हैं।

वातावरणमें खुशियोंका बहुमूल्य परोक्ष तथा प्रत्यक्ष भण्डार अपने विभिन्न मनोरम तत्त्वोंमें होता है। केवल जरूरत है कि आपको उन तत्त्वोंसे खुशी कैसे ढूँढ़नी है?

घरसे ही ले लें; घर माता-पिता, दादा-दादी, पत्नी-पति, बच्चे, पोता-पोती, सास-बहू-ससुर, भाई-बहन, मित्र, रिश्तेदार आदि रिश्तोंकी अद्भुत रचनासे मालामाल (भरपूर) खुशियोंका खजाना है, क्या इसको ढूँढ़नेकी जरूरत है!

रिश्तोंकी प्रत्येक ख्वाहिश (इच्छा)-को मन्दिरके पुजारीकी भाँति अर्चना-पूजाके थालमें रखकर सच्चे दिलसे, सहृदयतासे, एकाग्रताकी माला पहनकर आरती उतारते जाओ, खुशियोंका प्रसाद आपके पास होगा। एक दिव्यानन्द, लौकिकताकी हकीकतमें आपके मस्तिष्कके गगनमें अनेक ही आशाओंके झिलमिलाते सूर्य, चाँद, सितारे उदय होकर रोशनियोंके वन्दनवार दिलोंके दरवाजों (दहलीजों)-के ऊपर सजा देंगे। आनन्दकी एक अनुभूति, एक अतिरूप रोशनी सच्च खण्डकी पर्यायवाची होकर रूहके सुन्दर गुलशनमें भगवत्प्राप्तिका अहसास दे जायगी।

जीवनके प्रत्येक तत्त्वमें, प्रकृतिके प्रत्येक तत्त्वमें, ब्रह्माण्डके प्रत्येक तत्त्वमें खुशी छुपी हुई है। जरूरत है सुहृदयता, सच, नेकी, आध्यात्मिकता, प्यार, नम्रता, अभिवादन-अभिनन्दन, संकल्प, प्रण, त्याग, परिश्रम, अन्तर्योग, रंग-जाति-पाँतिरहित और अपनेपनका तिनका-तिनका इकट्ठा करके बनाया गया दिलमें एक सूक्ष्म-मजबूत, प्यारा-सा, किसी इच्छाकी शाखपर झूलता सुन्दर घरोंदा हो।

झूठ, रिश्वत, ठगीठोरी, बेईमानी, अहंकार (अहं) आदि तत्त्वोंमें खुशी चमककर आती है, परंतु कुछ क्षणों (पलों)-के लिये और फिर खुदकुशी कर लेती है तथा फिर जिन्दगीकी समस्त क्रियाओंको नरक बना देती है।

जब मानव अपनी सच्ची मेहनत, तन्मय साधना, ऊँचे संकल्प, अच्छी योजना, एकाग्र शक्ति आदिसे किसी

प्राप्ति (उपलब्धि)-की बहुत दूर खड़ी मंजिलको पानेके लिये तत्पर होता है, तो उसकी सारी दिमागी तथा शारीरिक शक्ति ईमानदारी एवं संघर्षके नुकीले रास्तोंसे निकलती हुई उसे अपने अस्तित्वमें समेट लेती है, तो एक चिरस्थायी खुशीका जन्म होता है, जिसका आनन्द उनके तन-मन-रूहमें उत्साहकी सुरभि भरता हुआ उसकी तृप्तिको पूर्णताके बन्धनमें बाँधकर अनेक खुशियोंका संगम कर देता है।

सारी प्राकृतिक भव्यता, अच्छी पुस्तकें, साहित्यिक रिसाले, अखबारोंके अच्छे कालम, लेख, विभिन्न रिश्तोंमें राम-भरतकी पादुका (खड़ाऊँ)-सदृश रिश्ते आदि तत्त्वोंमें खुशीके सकारात्मक, सौन्दर्यपूर्ण सूर्य तथा समन्दर छिपे हुए हैं, जिनका चिन्तन आविष्कारक शक्तिसे करनेकी आवश्यकता होती है।

संवेदनशीलता, अहसास तथा महसूस करनेकी भीतरी शक्तियाँ जब मानवमें उजागर होकर उसको अच्छे-बुरेकी पहचान, सीखने और माननेकी भावनाके संग्रहको प्यारकी मीठी चासनीमें डालकर नई मीठी-मीठी खुशबूदार कृति तैयार करती हैं, तो खुशीका जन्म होता है।

किसी भी मानवको कोई हजार वर्ष थोड़े ही जीना है, ज्यादा-से-ज्यादा मानवकी आयु एक सौ वर्ष मान लो। सौ वर्ष तो चुटकीके साथ व्यतीत हो जाते हैं। अब आप देख लें आपकी आयु कितनी है? भला ऐसा महसूस नहीं हो रहा कि आप जिस आयुमें हैं, ऐसे नहीं लगता कि यह आयु तो चुटकीकी भाँति बीत चुकी है। आप सोचेंगे कि कई अधूरे काम रह गये हैं, जो नहीं किये, तथा बुढ़ापेने जीवनकी पुस्तकके आखिरी पन्नेपर हस्ताक्षर कर दिये हैं। आप अब कुछ नहीं कर सकते।

दोस्तो, जवानी तथा प्रौढ़ताकी आयु एक बहुत ही खूबसूरत, कर्मठ और जानदार आयु होती है। यह आयु ही उपलब्धियोंकी आयु होती है। परिश्रम, संघर्ष, संकल्प, प्रण, निष्ठा, प्रतिष्ठा आदिकी आयु होती है। जो लोग इस आयुमें अपनी क्षणिक उपलब्धियों, लक्ष्योंको प्राप्त कर लेते हैं, उनके इर्द-गिर्द, आस-पास, हृदयमें खुशियोंके ढेर लगे रहते हैं।

खुशी ही एक ऐसी चीज है, जो मनको ताजगी, स्फूर्ति, भव्यता, प्यार-स्नेह-मोह, रिश्तोंका आनन्द, अपनापन, प्राकृतिक सौन्दर्य, तन्दुरुस्ती और स्वर्ग (वैकुण्ठ)-जैसी आनन्दानुभूति प्रदान करती है।

मैं एक सच्ची घटना आपके साथ साझी करना चाहता हूँ। मेरा एक परिचित व्यक्ति जो एक अच्छे पदपर आसीन था, उसने खूब रिश्वत ली, कई हेरा-फेरियाँ कीं। बहुत जायदाद बनायी। वह लगभग ५५ वर्षकी आयुमें बीमार पड़ गया। डॉक्टरोंने कहा इसको कैंसर है। कोई भी बचाव नजर नहीं आता। उसका इलाज एक अच्छे अस्पतालमें चल रहा था। मैं उसका हाल-चाल पूछनेके लिये गया। उसका शरीर गुब्बारेसे निकली हवाकी भाँति था। आँखें बीच धँसी हुई। सिरके बाल झड़ चुके थे। गोरा-चिट्टा रंग काला हो चुका था। लगता था कोई भूत हो। मैंने उसको कहा, 'भाई साहब, क्या हाल है?' वह मेरी ओर देखकर आँसू बहाने लगा; क्योंकि मैं उसकी जीवनशैलीसे परिचित था। उसकी अच्छी-बुरी क्रियाओंसे वाकिफ था, तो वो मुझसे रुआँसी तथा टूटती आवाजमें कहने लगा, जो कुछ भी जीवनमें किया है, सब कुछ दिमागमें घूम रहा है। दिल करता है कि वापस जाकर, उन सबसे मुआफी माँगूँ, जिनका मैंने दिल दुखाया है। जिनसे ज्यादतियाँ की हैं, जिनसे बेईमानियाँ की हैं आदि।

मैंने कहा, भाई साहब, आप अब वापस नहीं जा सकते। आप मुझे बताइये कि जीवन क्या है? हमें कैसे जीना चाहिये? कोई संदेश दें? ताकि हम भी कोई पाप न कर सकें। पापसे बच सकें।

उसने मुझे इशारेसे समझाया। मैं समझ गया तथा जेबसे एक कागज और पेन निकालकर दे दिया। कागजके ऊपर काँपते हाथोंसे उसने बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिख दिया 'लव' (प्यार)।

दोस्तो, खुशीकी मंजिल प्यार है। सचका प्यार, सहृदयताका प्यार, रिश्ते-नातोंका प्यार, दोस्तों-मित्रों-स्नेहियोंका प्यार, बेगानोंका प्यार, अपने-परका प्यार, आस-पासका प्यार और प्रत्येक तत्त्वमें खिली धूप-जैसा प्यार, ऊषाकाल-जैसा प्यार। दोस्तो, खुशीको ढूँढ़नेकी कोशिश करते रहो, खुशी आपके आस-पास ही तो है।

तीर्थ-दर्शन—

भूतधात्री युगाद्या शक्तिपीठ—क्षीरग्राम

(श्रीप्रदीपकुमारजी)

भूतधात्री युगाद्या शक्तिपीठ पश्चिम बंगालके वर्द्धमान (वर्दवान) जिलेके क्षीरग्राममें स्थित है। इस क्षेत्रको वीरभूमि कहा जाता है और इस क्षेत्रमें पाँच शक्तिपीठ स्थित हैं। क्षीरग्राममें देवीके दाहिने पैरके अँगूठेका निपात हुआ था। यहाँ भूतधात्री महामायाके साथ देवी भद्रकालीकी मूर्ति मिलकर एक हो गयी है। अत: देवीका नाम तभीसे युगाद्या पड़ गया है। देवीके मुख्य मन्दिरके निकट ही भैरव क्षीरकण्ठका मन्दिर एक टीलेपर स्थित है।

मन्दिर चारों ओर प्राचीरसे घिरा है तथा प्रांगण अति विशाल क्षेत्रमें फैला है। इसके एक ओर पुरातनकालका द्वार है, जो अपने-आपमें आश्चर्यजनक है; क्योंकि इसमें पास-पास दो छोटे-छोटे गुम्बद जुड़े हैं, जिनके नीचे द्वार है। प्रांगणके मध्यमें दो गुम्बद एवं एक बरामदायुक्त मन्दिर स्थित है। मन्दिरमें एक छोटा बरामदा है, जिसमें श्रद्धालु बैठकर भजन आदि गायन करते हैं। इसके पश्चात् एक बड़ा गुम्बद है, जिसके नीचे एक प्रकोष्ठ है, जिसमें एक ओर एक पलंग पड़ा है, जिसपर पुष्प आदि चढ़े रहते हैं—ऐसी मान्यता है कि देवी माँ प्रतिदिन यहाँ रात्रिमें शयन करती हैं। बड़े गुम्बदके पीछे दो तलोंवाला एक छोटा गुम्बद है, जिसके नीचे गर्भगृह है, जहाँ कोई मूर्ति स्थित नहीं है, बल्कि एक छोटी वेदी है, जहाँ प्रात:-सायं आरती-पूजा सम्पन्न की जाती है। मन्दिरके निकट ही एक टीलेपर भैरव क्षीरकण्ठका पृथक् सुन्दर मन्दिर स्थित है। माना जाता है कि इस मन्दिरका निर्माण महाराजा वर्द्धमानद्वारा कराया गया है।

मुख्य मन्दिरसे आधे किलोमीटरकी दूरीपर एक भव्य सरोवर स्थित है और इसीके एक किनारेपर सफेद रंगका भव्य मन्दिर निर्मित है। मन्दिर सुन्दर द्वारयुक्त दो गुम्बदोंवाला है। प्रथम गुम्बद बड़ा एवं गोलाकार है, जबकि द्वितीय गुम्बद पाँच तलोंवाला चौकोर और अत्यधिक ऊँचा है। इसीके नीचे माँका गर्भगृह है, जिसमें सर्वदा लगभग ६ फीट जल भरा रहता है और इसी जलमें माँ युगाद्याकी मूर्ति पूर्णतया डूबी रहती है। ये जल मन्दिरके चारों ओर दीवारसे रक्षित है तथा इसका लौहद्वार हमेशा बन्द रहता है।

देवी माँकी मूर्ति वर्षमें केवल दो बार ही जलसे बाहर दर्शन एवं पूजन-अर्चनहेतु सीमित समयके लिये ही निकाली जाती है। यह वर्षके एक दिवस वैशाख माहकी संक्रान्तिको प्रात: जलसे बाहर निकालकर मुख्य मन्दिरमें प्रतिष्ठित की जाती है और इसके दर्शन प्रात: चार बजेसे रात्रि आठ बजेतक ही होते हैं। इसी मध्य उनकी पूजा-अर्चना की जाती है, परंतु जल उसपर निरन्तर डाला जाता रहता है; क्योंकि ऐसी मान्यता है कि जल न डालनेपर माँकी मूर्ति क्षतिग्रस्त हो सकती है। शायद इसी कारणसे यह मूर्ति वर्षभर जलके अन्दर ही स्थित रहती है। वर्षके चौथे ज्येष्ठको देवी माँ जलसे बाहर मात्र सायं ६ बजेसे रात्रि १२ बजेतक ही निकाली जाती हैं और इसके पश्चात् पुन: सरोवर मन्दिरके गर्भगृहमें जलमग्न हो जाती हैं। वर्षके दोनों दिवसोंमें दर्शनहेतु सूचना स्थानीय समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित की जाती है और उन दिवसोंपर यहाँ भव्य मेला लगता है। क्षीरसरोवरमें मन्दिरके निकट ही एक और आधुनिक मन्दिर निर्मित है।

पहुँचनेका मार्ग एवं ठहरनेका स्थान—यहाँ पहुँचनेके लिये वायुमार्गहेतु कोलकाता एकमात्र हवाई अड्डा है, जहाँसे बस, टैक्सी आदिसे सरलतासे वर्द्धमान पहुँचा जा सकता है। वर्द्धमान जंक्शन हावड़ा-दिल्ली रेलमार्गके मध्यमें स्थित है। अनेक मुख्य नगरोंसे रेलगाड़ियाँ वर्द्धमान होकर ही जाती हैं। वर्द्धमानसे बस या टैक्सीद्वारा श्रद्धालु ४८ कि०मी० की दूरी तय करके कैचर तिराहा पहुँचते हैं, जहाँसे पैदल या रिक्शा आदिसे ५ कि०मी० चलकर क्षीरग्राम मन्दिरतक पहुँच सकते हैं। वर्द्धमान-कटवा नेरोगेज रेलोंसे यात्री कटवा पहुँचते हैं, जहाँसे क्षीरग्राम १७ कि०मी० दूर बस या अन्य साधनोंसे पहुँच सकते हैं।

क्षीरग्राममें ठहरनेकी उचित व्यवस्था नहीं है, अत: यात्रियोंको कैचर कटवा या वर्द्धमानमें ही ठहरना उचित होगा। खान-पान केवल मेलेके दिनोंमें ही मिलता है। अन्य दिवसोंपर केवल चाय-नाश्ता ही प्राप्त हो पाता है।

भक्त-गाथा—

भक्त पलटूदास
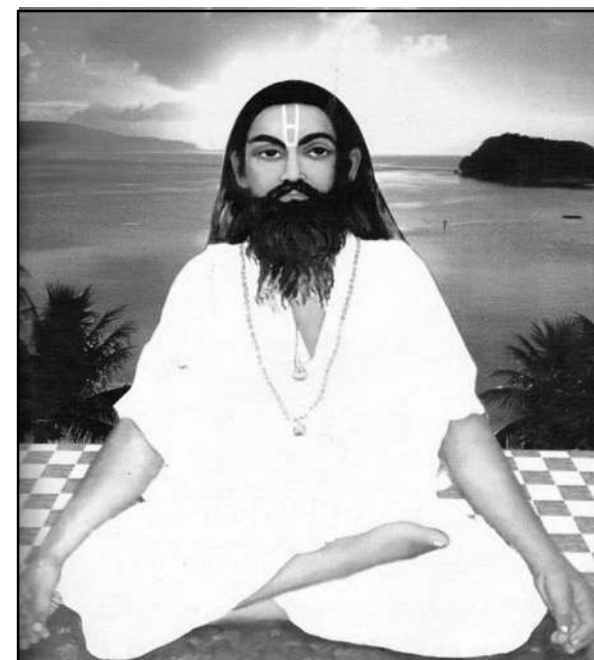
श्रीअयोध्याजीमें कनक भवन एवं हनुमानगढ़ीके बीचमें एक आश्रम है, जिसे बड़ी जगह अथवा दशरथमहलके नामसे जाना जाता है। काफी पहले वहाँ एक सन्त रहा करते थे, जिनका नाम था—श्रीरामप्रसादजी। उस समय अयोध्याजीमें इतनी भीड़-भाड़ नहीं होती थी। ज्यादा लोग नहीं आते थे। श्रीरामप्रसादजी ही उस समय बड़ी जगहके कर्ता-धर्ता थे। वहाँ बड़ी जगहमें मन्दिर है, जिसमें पत्नियोंसहित चारों भाई (श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत एवं श्रीशत्रुघ्नजी) हनुमान्‌जीकी सेवा होती है। चूँकि सब-के-सब फक्कड़ सन्त थे, तो नित्य मन्दिरमें जो भी थोड़ा-बहुत चढ़ावा आता था, उसीसे मन्दिर एवं आश्रमका खर्च चला करता था।

प्रतिदिन मन्दिरमें आनेवाला सारा चढ़ावा एक बनियेको जिसका नाम पलटू बनिया था, भिजवाया जाता था। उसी धनसे थोड़ा-बहुत जो भी राशन आता था, उसीका भोग-प्रसाद बनकर भगवान्‌को भोग लगता था और जो भी सन्त आश्रममें रहते थे, वे भी प्रसाद पाते थे। एक बार प्रभुकी ऐसी लीला हुई कि मन्दिरमें कुछ चढ़ावा आया ही नहीं, अब इन साधुओंके पास कुछ जोड़ा-गाँठा तो था नहीं, तो क्या किया जाय? कोई उपाय न देखकर श्रीरामप्रसादजीने दो साधुओंको पलटू बनियाके पास भेजकर कहलवाया कि 'भइया! आज तो कुछ चढ़ावा आया नहीं है, अत: थोड़ा-सा राशन उधार दे दो। कम-से-कम भगवान्‌को भोग तो लग ही जाय।'

पलटू बनियाने जब यह सुना तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि मेरा और महन्तजीका लेना-देना तो नकदका है। मैं उधारमें कुछ नहीं दे पाऊँगा। श्रीरामप्रसादजीको यह पता चला तो 'जैसी भगवान्‌की इच्छा' कहकर उन्होंने भगवान्‌को उस दिन जलका ही भोग लगा दिया। सारे साधु भी जल पीकर रह गये। प्रभुकी ऐसी परीक्षा थी कि रात्रिमें भी जलका ही भोग लगा और सारे साधु भी जल पीकर भूखे ही सोये। वहाँ मन्दिरमें नियम था कि शयन कराते समय भगवान्‌को एक बड़ा सुन्दर पीताम्बर ओढ़ाया जाता था तथा शयन आरतीके बाद श्रीरामप्रसादजी नित्य करीब एक घंटा बैठकर भगवान्‌को भजन सुनाते थे। पूरे दिनके भूखे रामप्रसादजी बैठे भजन गाते रहे और नियम पूरा करके सोने चले गये।

धीरे-धीरे करके रात बीतने लगी। करीब आधी रातको पलटू बनियाके घरका दरवाजा किसीने खटखटाया। बनिया घबरा गया कि इतनी रातको कौन आ गया। जब आवाज सुनी तो पता चला कुछ बच्चे दरवाजेपर शोर मचा रहे हैं—'अरे पलटू…पलटू सेठ…अरे! दरवाजा खोल।' उसने हड़बड़ाकर खीझते हुए दरवाजा खोला। सोचा कि जरूर ये बच्चे शरारत कर रहे होंगे…। अभी इनको अच्छेसे डाँट लगाऊँगा। जब उसने दरवाजा खोला तो देखता है कि चार लड़के जिनकी अवस्था बारह वर्षसे भी कमकी होगी, एक पीताम्बर ओढ़कर खड़े हैं।

वे चारों लड़के एक ही पीताम्बर ओढ़े थे। उनकी छवि इतनी मोहक ऐसी लुभावनी थी कि ना चाहते हुए भी पलटूका सारा क्रोध प्रेममें परिवर्तित हो गया और वह आश्चर्यसे पूछने लगा—'बच्चो! तुम हो कौन और इतनी रातको क्यों शोर मचा रहे हो?'

बिना कुछ कहे बच्चे घरमें घुस आये और बोले—हमें रामप्रसाद बाबाने भेजा है। ये जो पीताम्बर हम ओढ़े हैं, इसका कोना खोलो, इसमें सोलह सौ रुपये हैं, निकालो और गिनो। ये वह समय था, जब आना और पैसा चलता था। सोलह सौ रुपये उस समय बहुत बड़ी रकम हुआ करती थी। जल्दी-जल्दी पलटूने उस पीताम्बरका कोना खोला तो उसमें सचमुच चाँदीके सोलह सौ सिक्के निकले। प्रश्नभरी दृष्टिसे पलटू बनिया उन बच्चोंको देखने लगा। तब बच्चोंने कहा—'इन पैसोंका राशन कल सुबह आश्रम भिजवा देना।'

अब पलटू बनियाको थोड़ी शर्म आयी—'हाय! आज मैंने राशन नहीं दिया। लगता है महन्तजी नाराज हो गये हैं, इसीलिये रातमें ही इतने सारे पैसे भिजवा दिये।' पश्चात्ताप, संकोच और प्रेमके साथ उसने हाथ जोड़कर कहा—'बच्चो! अपनी पूरी दूकान भी उठाकर मैं महन्तजीको दे दूँगा तो भी ये पैसे ज्यादा ही बैठेंगे। इतने मूल्यका सामान देते-देते तो मुझे पता नहीं कितना समय लग जायगा।' बच्चोंने कहा—'ठीक है! आप एक साथ सामान मत दीजिये··· थोड़ा-थोड़ा करके अबसे नित्य ही सुबह-सुबह आश्रम भिजवा दिया करिये। आजके बाद कभी भी राशनके लिये मना मत कीजियेगा।

पलटू बनिया तो मारे शर्मके जमीनमें गड़ा जाय। वह फिर हाथ जोड़कर बोला—'जैसी महन्तजीकी आज्ञा।' इतना कह-सुनकर वे बच्चे चले गये। लेकिन जाते-जाते पलटू बनियाका मन भी ले गये। इधर सबेरे-सबेरे मंगला आरतीके लिये जब पुजारीजीने मन्दिरके पट खोले तो देखा भगवान्‌का पीताम्बर गायब है। उन्होंने ये बात रामप्रसादजीको बतायी और सबको लगा कि कोई रातमें पीताम्बर चुराकर ले गया। जब थोड़ा दिन चढ़ा तो गाड़ीमें ढेर सारा सामान लदवाकर कृतज्ञताके साथ हाथ जोड़े हुए पलटू बनिया आया और सीधा रामप्रसादजीके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगा।

रामप्रसादजीको तो कुछ पता ही नहीं था। वे पूछे—'क्या हुआ··· ? अरे! किस बातकी माफी माँग रहा है?' पर पलटू बनिया उठे ही ना और कहे—'महाराज, रातमें पैसे भिजवानेकी क्या आवश्यकता थी? मैं कान पकड़ता हूँ, आजके बाद कभी भी राशनके लिये मना नहीं करूँगा और ये रहा आपका पीताम्बर। वे बच्चे मेरे यहाँ ही छोड़ गये थे। बड़े प्यारे बच्चे थे। इतनी रातको बेचारे पैसे लेकर आ भी गये। आप बुरा न मानें तो मैं एक बार उन बालकोंको फिरसे देखना चाहता हूँ।'

जब रामप्रसादजीने वह पीताम्बर देखा तो पता चला ये तो हमारे मन्दिरका ही है, जो गायब हो गया था। अब उन्होंने पूछा कि ये तुम्हारे पास कैसे आया? तब उस बनियाने रातवाली पूरी घटना सुनायी। अब तो रामप्रसादजी भागे जल्दीसे और सीधा मन्दिरमें जाकर भगवान्‌के पैरोंमें पड़कर रोने लगे कि 'हे भक्तवत्सल! मेरे कारण आपको आधी रातमें इतना कष्ट उठाना पड़ा और कष्ट उठाया सो उठाया। मैंने जीवनभर आपकी सेवा की, मुझे तो दर्शन न हुआ और इस बनियेको आधी रातमें दर्शन देने पहुँच गये।'

जब पलटू बनियाको पूरी बात पता चली तो उसका हृदय भी धक्‌से होकर रह गया कि जिन्हें मैं साधारण बालक समझ बैठा, वे तो त्रिभुवनके नाथ थे। अरे! मैं तो चरण भी न छू पाया। अब तो वे दोनों ही लोग बैठकर रोयें। इसके बाद कभी भी आश्रममें राशनकी कमी नहीं हुई। आजतक वहाँ सन्त-सेवा होती आ रही है। इस घटनाके बाद ही पलटू बनियाको वैराग्य हो गया और वे पलटू बनिया ही बादमें श्रीपलटूदासजीके नामसे विख्यात हुए।

श्रीरामप्रसादजीकी व्याकुलता उस दिन हर क्षणके साथ बढ़ती ही जाय और रातमें शयनके समय जब वे भजन गाने बैठे तो मूर्च्छित होकर गिर गये। संसारके लिये तो वे मूर्च्छित थे, किंतु मूर्च्छावस्थामें ही उन्हें पत्नियोंसहित चारों भाइयोंका दर्शन हुआ और उसी दर्शनमें श्रीजानकीजीने उनके आँसू पोंछे तथा अपनी उँगलीसे इनके माथेपर बिन्दी लगायी, जिसे फिर सदैव इन्होंने अपने मस्तकपर धारण करके रखा। उसीके बादसे इनके आश्रममें बिन्दीवाले तिलकका प्रचलन हुआ। **[साभार—सोशल मीडिया]**

संस्कृति, धर्म एवं आस्थाकी पर्याय—गंगा

(प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)

केचित्स्मरन्त्यनुसरन्ति च केचिदन्ये
पश्यन्ति पुण्यपुरुषाः कति च स्पृशन्ति।
मातर्मुरारिचरणाम्बुजमाध्वि गंगे
भाग्याधिकाः कतिपये भवतीं पिबन्ति॥

(पण्डितराज जगन्नाथ)

धर्म और संस्कृति मानवतापर आरोपित प्रक्रिया नहीं है। वह एक सहज प्रक्रिया है। व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिये ही व्यवस्थासे उनका जन्म होता है। यदि मनु **(दशकं धर्मलक्षणम्)**, पतंजलि तथा अन्यान्य धर्माचार्यों (वसिष्ठ, आपस्तम्ब, गौतम आदि)-के धर्मलक्षणोंको उपेक्षित भी कर दिया जाय, तो भी उसकी सहज अपेक्षा तथा अवश्यकरणीयताका तिरस्कार नहीं किया जा सकता; क्योंकि धर्म एवं संस्कृति मानव-जीवनमें समरस हैं, एकरूप हैं। प्रकृति स्वयं धर्म एवं संस्कृतिका निर्माण करती है। हमें सुगन्ध अच्छी लगती है दुर्गन्ध नहीं, शर्बत मीठा लगता है मिर्चा नहीं, पर्वतोंकी घाटियाँ दर्शनीय प्रतीत होती हैं, मरघटका दृश्य नहीं।

जैसे प्रकृतिके व्यापार अनुकूल एवं प्रतिकूल होते हैं, ठीक उसी प्रकार मानवीय व्यवहारोंके भी। जिन अनुकूल मानवीय व्यवहारोंसे समाज व्यवस्थित होता है, अभ्युदय प्राप्त करता है—उसे धर्म कहते हैं—**धर्मो धारयति प्रजाः** (मनुस्मृति)। समाज सत् प्रवृत्तियोंसे धारण किया जाता है, जिनकी संख्या आचार्य मनुने दस मानी है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

मनुद्वारा प्रतिपादित धर्मका उपर्युक्त स्वरूप वस्तुतः लौकिक अभ्युदयको दृष्टिमें रखकर प्रतिपादित किया गया है; परंतु धर्मका लक्ष्य केवल लोकाभ्युदय ही नहीं है बल्कि पारलौकिक श्रेय अथवा निःश्रेयसकी सिद्धि भी उसका प्राप्तव्य है। इसीलिये महर्षि पतंजलिने कहा—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

हमारे तत्त्वदर्शी आचार्योंने चार पुरुषार्थोंकी प्रतिष्ठापना करते हुए भी काम एवं अर्थको धर्मद्वारा अनुमोदित होनेकी शर्त रखी है; क्योंकि धर्म ही अर्थ एवं कामको सन्तुलित रख सकता है। अन्यथा अगम्य-गमन भी कामतृप्तिका साधन बन जाता। चौर्यवृत्ति अथवा छल-छद्म-अत्याचारसे भी धनोपार्जन करना न्याय्य बन जाता। गीतामें भगवान् कृष्णने इसी अभिप्रायको स्पष्ट करते हुए कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ!

इसी धर्मका साध्य है मुक्ति अथवा मोक्ष! न्यायशास्त्र इसे अपवर्ग कहता है, तो सांख्य कैवल्य। वेदान्त इसे मुक्ति अथवा मोक्ष कहता है, तो सौगतदर्शन परिनिर्वाण। हनुमन्नाटकके रचयिताने नाटककी नान्दीमें इस मतभेदका अत्यन्त रोचक वर्णन किया है।* शिवमहिम्नस्तोत्रके कवि पुष्पदन्तने उस भेददृष्टिमें भी अभेद स्थापित करते हुए कहा है—

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

धर्मका साधन-पक्ष कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। नाना प्रकारके व्रत, उपवास, पुरश्चरण, अनुष्ठान, तीर्थाटन, तन्त्र-मन्त्र तथा लोकाचार धर्माचरणकी पूर्तिमें सहायक बनते हैं। इसी सन्दर्भमें हम यह निरूपित करनेका प्रयास करेंगे कि धर्मके साध्य तथा साधनपक्षोंकी स्थापनामें देवनदी गंगाका क्या योगदान है? जैसे चैतन्य आत्मतत्त्वके अभावमें शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार मुक्तिके अभावमें सारा कर्मकाण्ड व्यर्थ है। मुक्ति तथा कर्मकाण्ड एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। शरीरकी ही तरह कर्मकाण्ड स्थूल है, सर्वजनसंवेद्य है; परंतु आत्माकी तरह मुक्ति अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्व है, सर्वजनसंवेद्य नहीं है।

भारतीय धर्म एवं संस्कृतिका स्वरूप बताता है कि गंगा धर्मके साध्य एवं साधन दोनों पक्षोंकी अन्वितिमें सहायक रही है। एक ओर जहाँ आप्त-प्रमाणसे हम

* यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

'गंगे! तव दर्शनान्मुक्तिः' का उद्घोष सुनते हैं, वहीं नाना प्रकारके व्रतानुष्ठानोंमें गंगाका अविच्छिन्न योगदान भी देखते हैं। मुक्तिमें गंगाका सहकार निरूपित करनेसे पूर्व गंगाका कर्मकाण्डीय स्वरूप देखना उचित होगा। धर्मका कर्मकाण्डीय स्वरूप देश, काल तथा व्यक्तिकी भिन्नताओंके कारण अत्यन्त जटिल बन गया है। एक ही तथ्यको विभिन्न स्मृतिकार पृथक् व्याख्यात करते हैं। फिर भी गंगा-सम्बन्धी कर्मकाण्डीय व्यवस्थाओंको हम कुछ शीर्षकोंमें निरूपित कर सकते हैं—

गंगाकी व्यापकता—जैसे पुष्पकी सुरभि समूचे वातावरणको महका देती है, उसी प्रकार पवित्र गंगा पावनताकी सर्जना करती है। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाण पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण (प्रकृति-खण्ड अ० १८) शंखमें गंगाका निवास मानता है।[१] पद्मपुराण (उत्तरखण्ड अ० १२९)-की भी मान्यता है कि शंखमें स्थापित जल गंगाजल-जैसा पवित्र होता है।

देवीभागवत (११। ६। ३६-३७)-में रुद्राक्षमें गंगाका निवास माना गया है—

रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरः स्नानं करोति यः॥
गंगास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः।

नारदपुराण (९।१२५)-में तुलसीदलमें गंगाकी स्थितिका प्रमाण मिलता है।

तुलसीदलसम्मिश्रमपि सर्षपमात्रकम्।
गंगाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम्॥

गर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डमें भी इसी मान्यताका समर्थन मिलता है।

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा।
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले॥
(गर्ग० वृन्दावन० १६। १३)

पतिव्रता नारीमें गंगाका निवास शिवपुराणसे प्रमाणित होता है—

यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत्॥

पितरोंकी सेवामें गंगास्नानोचित पुण्य विद्यमान है, ऐसा पद्मपुराण (भूमिखण्ड अ० ६२ श्लोक ५८ से ७४ तक)-में कहा गया है—

पितॄणां सेवनात् गंगास्नानजन्यफलं भवेत्।

इसी प्रकार शिवनाम शिवविभूति[२], अच्युतकथा-प्रसंग[३], ब्रह्मकमण्डलु[४], शिवजटाजूट[५], विष्णुचरण[६], नर्मदातटवर्ती नन्दिकेश्वरतीर्थ[७], नर्मदा, कावेरी, गोमती तथा आविन्ध्या नामक देश-विदेशमें गंगाकी व्यापकताके बहुशः प्रमाण पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। नर्मदाको अर्धगंगा, कावेरीको दक्षिणगंगा तथा गोमतीको पूर्वगंगा अथवा आदिगंगा कहा गया है।

नारदपुराण (२। ३८। १७—१९)-में उल्लेख मिलता है कि प्रत्येक मासके शुक्लपक्षमें षष्ठीसे अमावस्यातक गंगा पृथ्वीमें रहती हैं, शुक्लप्रतिपदासे दशमीतक पातालमें तथा शुक्ल एकादशीसे कृष्णपक्षकी पंचमीतक स्वर्गलोकमें सन्निहित रहती हैं।

इन उदाहरणोंका रहस्य सुलझाना कुछ कठिन अवश्य प्रतीत होता है; परंतु इनसे एक तथ्य अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि गंगा समस्त पार्थिव वस्तुओं, लोकों, तीर्थों, जीवों तथा अनुभूतियोंमें व्याप्त है। ऐसी सर्वव्यापकता शायद ही किसी औरको प्राप्त हुई हो जगन्नियन्ता ईश्वरको छोड़कर। इससे गंगाके दैवी रूपकी महिमा और पार्थिवरूपकी गरिमा स्पष्ट हो जाती है।

गंगास्नानका महत्त्व—गंगा-सम्बन्धी कर्मकाण्ड (धर्माचरण अथवा साधनापक्ष)-का दूसरा सोपान है

---

१ शंखे चन्द्रार्कदैवत्यं मध्ये वरुणदैवतम्। पृष्ठे प्रजापतिं विद्यादग्रे गंगा सरस्वतीम्॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया। शंखे तिष्ठन्ति विप्रेन्द्र तस्माच्छंखं प्रपूजयेत॥

२. द्रष्टव्य-शिवपुराण, विश्वेश्वरसंहिता, २३। १० तथा १४

३. वही, गंगा यमुना त्रिवेणी…, यत्राच्युतद्वारकथाप्रसंगः।

४. द्रष्टव्य-शिवपुराण, पार्वतीखण्ड, ११। ५

५. द्रष्टव्य-महाभारत, वनपर्व, अ० १०९

६. वाल्मीकिकृत गंगाष्टक।

७. द्रष्टव्य-शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता, ७। ३४

गंगास्नान। गंगाका स्मरण, अनुसरण, दर्शन, स्पर्श तथा पान उत्तरोत्तर पुण्योत्कर्षका सूचक है। साकल्येन ये समस्त क्रियाएँ गंगास्नानमें ही अन्तर्भूत हैं। गंगास्नानके दो पक्ष हैं, एक तो शारीरिक मलका अपनोदन, सद्यः स्फूर्ति, औषधीय गंगाजलके पानसे रोगोंका प्रशमन; परंतु इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है इस स्नानका दूसरा पक्ष अर्थात् आत्मशुद्धि। गंगास्नानसे अन्त:करण प्रकाशपुंजसे दीप्त हो उठता है तथा वासनाओंके तन्तु क्षीण हो जाते हैं। आचार्य शंकरकी दृष्टिमें यही मानसस्नान है, यही साधनाकी पराकाष्ठा है।

वस्तुत: सत्प्रवृत्तियोंका उदय ही गंगास्नानका लक्ष्य है। यदि गंगास्नानसे पूर्व अथवा पश्चात् मनमें मलिनता रही अथवा पापका उदय हुआ, तो गंगास्नानकी कोई सार्थकता नहीं। वस्तुत: भावशुद्धि ही आत्मिक अभ्युदयका हेतु है।* यदि ऐसा न होता तो गंगाजलमें रहनेवाले मत्स्यों अथवा देवालयवासी पक्षियोंकी भी मुक्ति हो ही जाती। शिवपुराणमें ठीक ही कहा गया है—

गंगादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम्।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते तीर्थावगाहाच्च तथैव दानात्॥

गंगास्नानकी फलश्रुतिके भी अनेक प्रमाण हमें प्राचीन वाङ्मयमें मिलते हैं। **नारदपुराण**में छ: मासतक निरन्तर गंगास्नान करनेसे राक्षसत्व छूट जानेकी बात कही गयी है। नित्य गंगास्नानसे मनुष्य सूर्यके समान पवित्र होता है। नित्य अरुणोदय गंगास्नानसे प्राणी ६० हजार वर्षतक हरिमन्दिर (स्वर्ग)-में वास करता है, ऐसा **देवीभागवत** (९।३०।५९)-में प्राप्त होता है। १३ मास गंगास्नान करनेसे पुत्रप्राप्तिका प्रमाण **शिवपुराण** शतरुद्रीय-संहिता (१३।३६)-में मिलता है। इसी प्रकार **रुद्रयामल** तथा **कल्किपुराण**के उद्धरणोंमें गंगास्नानसे धन-धान्य एवं लक्ष्मी-प्राप्ति, बल एवं आयुकी वृद्धि तथा ब्रह्महत्यादि पापोंका शमन बताया गया है।

अथर्ववेद (४।८।६)-में दिव्या पयस्वतीके रूपमें सम्भवत: गंगाजलकी ही भेषजीय संजीवनशक्तिको संकेतित किया गया है। अनेक वैज्ञानिक प्रयोगोंसे भी गंगाजलकी पथ्यता सिद्ध हो चुकी है।

व्रतानुष्ठान एवं गंगा—गंगा-सम्बन्धी व्रतानुष्ठान जहाँ धर्मके साधना-पक्षके पूरक हैं, वहीं संस्कृतिके निर्माणमें भी सहायक हैं। व्रत, उपवास तथा मन्त्र-तन्त्र आदि शरीर-शुद्धिके हेतु हैं। इनका लक्ष्य होता है नवग्रह अथवा किसी अन्य देवताको लक्ष्य बनाकर आराधना करना और आराधनाका लक्ष्य होता है अरिष्टका विनाश, अभीष्टकी प्राप्ति अथवा किसी बाधित लोकैषणाकी सम्पूर्ति।

उत्तर भागके ग्राम्य परिवेशमें आज भी वन्ध्या स्त्रियाँ गंगामें कटा हुआ कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) पुत्रप्राप्तिकी कामनासे अर्पित करती हैं अथवा 'पियरी' (पीली साड़ी) अर्पित करती हैं। वैधव्य प्राप्त होनेपर गंगातटपर क्षौरकर्म कराने तथा वस्त्रत्यागकी परम्परा भी है। बच्चोंका मुण्डन गंगातटपर कराना भी एक प्रथा है। गंगातटपर पिण्डदान, याग-यज्ञ, प्रवचन, वैर-समाप्ति, शपथ-ग्रहण आदि पारम्परिक कृत्य आज भी प्रचलित हैं। इन कार्योंसे गंगाका लोकमानसमें 'साक्षित्व' उभरता है। वह प्रत्येक सत्प्रवृत्तिकी साक्षी हैं एक जीवन्त देवताके रूपमें, एक ममतामयी माँके रूपमें। अपने आकर्षक केशकुन्तल कटाना, सौभाग्यसूचक चूड़ियाँ फोड़ना, सुन्दर वेषभूषा त्यागना, गंगाको अपने फूटे भाग्यका साक्षी माननेका ही प्रतीक है।

इन सांस्कृतिक कृत्योंके साथ-ही-साथ अनेक व्रतानुष्ठान भी गंगासे सम्बद्ध हैं। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अ० ८२)-में गंगासप्तमी व्रतका विस्तृत वर्णन मिलता है। वैशाख शुक्ल सप्तमीको ही महर्षि जह्नुने गंगाको पी लिया था और फिर भागीरथकी प्रार्थनापर दाहिने कर्णछिद्रसे उन्हें बाहर निकाल दिया था। इस दिन हरिद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखलमें गंगास्नान करनेसे वैकुण्ठ-प्राप्ति होती है।

हरिवंशपुराणमें भी माघमासके शुक्लपक्षमें गंगाव्रतकी विधि और महिमाका विस्तृत विवेचन है। पतिकी अनुकूलता तथा सपत्नीभयकी समाप्ति ही इस व्रतका प्रमुख लक्ष्य है।

वराहपुराणमें दशहरा व्रतका विस्तृत वर्णन है। ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षीया दशमी, मंगलवार, हस्त नक्षत्रमें देवनदी गंगा स्वर्गसे पृथ्वीपर उतरी थीं। अपने अवतरणमात्रसे

* भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा॥ (नारदपुराण)

गंगाने दस प्रकारके पापोंको नष्ट कर दिया। इसलिये इस पर्वको दशहरा कहते हैं—**हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता।** हेमाद्रि-प्रणीत चतुर्वर्गचिन्तामणि तथा स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें दशहराव्रत-सम्बन्धी अन्यान्य महत्त्वपूर्ण तथ्य भी दिये गये हैं, जिन्हें विस्तारभयसे यहाँ वर्णित नहीं किया जा रहा है।

गंगाद्वारा विनष्ट दस पापोंकी व्याख्या **स्कन्दपुराण** में मिलती है। तीन कायिक (अदत्त-उपादान, अवैदिकी हिंसा तथा परदारोपसेवन), चार **वाचिक** (पारुष्य, अनृत, पैशुन्य तथा असम्बद्ध प्रलाप) तथा तीन **मानस** पाप (परद्रव्याभिध्यान, अनिष्टचिन्तन, वितथाभिनिवेश) ही मिलकर दस पाप होते हैं।

गंगा-सम्बन्धी मन्त्र-तन्त्रके अनुष्ठान भी चिरकालसे ही लोकप्रचलित रहे हैं। मन्त्रमें प्रायः संकेताक्षरोंका प्रयोग होता है, जो कि उपास्य देवताके स्वरूप एवं शक्तिसे सम्बद्ध होते हैं। **भविष्योत्तर-पुराण**में २२ अक्षरके गंगामन्त्रका वर्णन है, जिसे दशहरा तिथिपर पाँच हजार संख्यामें जपनेपर दस धर्मफल प्राप्त होते हैं। **स्कन्दपुराण**में २० अक्षरके गंगामन्त्रकी व्याख्या की गयी है। **अग्निपुराण**में भी गंगा-सम्बन्धी एक वशीकरण मन्त्रका वर्णन है, जिसके एक लाख जप तथा दशांश (दस हजार) आहुतिसे मनुष्य इन्द्रादि देवोंको भी वशीभूत कर सकता है। यह मन्त्र देवाधिदेव शंकरद्वारा षडाननको उपदिष्ट किया गया है।

गंगा-विषयक विधि-निषेध—धर्म-साधना (कर्मकाण्ड)-में विधि-निषेधका भी बड़ा महत्त्व है; क्योंकि सारे अनुष्ठानोंकी सफलता-असफलता उनपर उसी प्रकार निर्भर है, जैसे औषधिकी सफलता-असफलता पथ्य अथवा परहेजपर। इस विधि-निषेधका भी वैज्ञानिक पक्ष है, जिसे समझनेके लिये असीम धैर्य, आस्था तथा गहन ज्ञानकी आवश्यकता है। आजका अर्थलोलुप, अनास्थालु समाज साधनाकी उन ग्रन्थियोंको प्रायः समझ नहीं पाता, अतः इन बातोंको बड़ी सरलतासे पाखण्ड मानकर निश्चिन्त हो जाता है।

गंगामें करनेयोग्य **(विधेय)** कार्य विविध प्रमाणोंके आधारपर मुख्यतः इस प्रकार हैं—१.प्राणत्याग, २.मन्त्रानुष्ठान, ३.तपश्चरण।

प्रारम्भमें सम्भवतः असाध्य रोगसे पीड़ित अथवा वार्धक्यकी यन्त्रणासे जर्जर लोग ही गंगामें मृत्युवरण करते होंगे। कालान्तरमें धर्मभीरु जनताके लिये यह प्रथा मुक्तिका पर्याय बन गयी। फलतः गंगामें प्राणत्यागकी अनिवार्यतासे बचनेके लिये लोग गंगातटपर मुण्डन कराने लगे। लोकपरम्परामें किसीका बाल उतरवा लेना मृत्युके ही समान कष्टकर दण्ड है।

विधि कर्मोंके अनन्तर **निषेध-कर्म** आते हैं। इन निषेध-कर्मोंकी वर्जना तथा दुष्परिणतिका सूक्ष्म व्याख्यान पुराणोंमें मिलता है। मुख्य निषिद्ध कर्म इस प्रकार हैं—

१. गंगास्नानमें यान-निषेध[1]।

२. गंगाजल-विक्रय-निषेध[2]।

३. गंगाको साक्षी मानकर मिथ्याभाषणका निषेध[3]।

४. गंगामें वर्ज्य १४ कार्य—

गंगाके समीप शौच, गंगाजलमें उच्छिष्ट जलमोचन (कुल्ला करना), गंगामें बाल झाड़ना या बहाना, निर्माल्य फेंकना, मैल छुड़ाना, शरीर मलना, हँसी-मजाक करना, दान लेना, गंगातटपर मैथुन, अन्य तीर्थोंके प्रति अनुराग रखना, अन्य तीर्थकी महिमाका गायन, कपड़ा धोना अथवा बहाना, गंगाजलको पीटना तथा गंगाजलमें सन्तरण (जलक्रीड़ा) करना[4]।

पुण्यार्जनस्त्रोत-गंगातीर्थ—साधनाका पाँचवाँ पक्ष है गंगातटवर्ती तीर्थोंकी यात्रा। तीर्थ उस भूखण्डको कहते हैं, जो किसी महान् ऋषि-महर्षिकी तपःस्थली हो अथवा किसी देवताका निवासस्थान हो। गंगोत्रीसे सागरतक प्रवहमान भगवती गंगाके पावन तटपर हजारों ऋषियों-मुनियोंने घोर तप किया, जिनकी स्मृतिमें आज

---

१. ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत्सर्वं तस्माद्यानं विवर्जयेत्॥ (नारद० २। ६२)

२. गंगाविक्रयणाद् देवि विष्णोर्विक्रयणं भवेत्। जनार्दनस्तु विक्रीतो विक्रीतं भुवनत्रयम्॥ (नारद० २। ४४। १२५)

३. द्रष्टव्य—देवीभागत, ९। ३५-३६ तथा नारदपुराण २। ३९। १६

४. सविस्तर द्रष्टव्य—ब्रह्माण्डपुराण १। ५३५

भी वहाँ तीर्थ स्थापित हैं। इन तीर्थोंमें निवास करनेका माहात्म्य पुराणोंमें वर्णित है। हिमालयकी भागीरथी, अलकनन्दा, धौलीगंगा, पिण्डरगंगा, मन्दाकिनी आदि धाराएँ देवप्रयागमें समन्वित होकर विशाल सागरके रूपमें हृषीकेशकी समतल भूमिपर उतरती हैं। सागरतक गंगामें अनेक सहायक नदियाँ मिलती हैं, जिनके तटपर असंख्य तीर्थ स्थित हैं।

गंगाकी मुख्य धाराके तटपर स्थित तीर्थोंकी कुल संख्या प्राय: ७० है, जिनमें प्रमुख हैं—गोमुख, बदरिकाश्रम, हृषीकेश, हरिद्वार, सूकरक्षेत्र, ब्रह्मावर्त (बिठूर), प्रयाग, काशी और गंगासागर।

भारतके अन्य भागोंमें भी, जहाँ सचमुच भौतिक गंगा प्रवाहित नहीं हैं, गंगाके नामसे तीर्थ स्थापित हैं। इससे भारतीय संस्कृतिमें गंगाकी प्रतिष्ठाका रहस्य जाना जा सकता है। इन गंगा-तीर्थोंकी संख्या प्राय: ६७ है।*

इस समीक्षाका दूसरा पक्ष है मुक्तिलाभमें गंगाका योगदान। मुक्ति अथवा मोक्ष धर्मका साध्य है। वेदान्तमें ब्रह्मसाक्षात्कार (अहं ब्रह्मास्मि)-को ही मुक्ति माना गया है और धर्माचार्योंने गंगाको **ब्रह्मद्रव** कहा है। पौराणिक आख्यानोंमें गंगा भगवान् विष्णुके चरणोंका निर्णेजन (प्रक्षालनजल) हैं, अत: उन्हें **विष्णुपदी** अथवा **विष्णुप्रिया** कहा गया है। विष्णुके साथ गंगाका यही तादात्म्य सिद्ध करता है कि **गंगामय** होनेका तात्पर्य है **विष्णुमय** होना, **ब्रह्ममय** होना। इस प्रकार भौतिकरूपमें जो गंगा मुक्तिका साधन है, पारमार्थिकरूपमें वही गंगा मुक्तिका साध्य भी है। वह स्वयं मुक्तिका पर्याय है। यह सत्य केवल शब्दप्रमाणसे ही ग्राह्य हो सकता है, प्रत्यक्षादिसे नहीं।

गंगासे मुक्तिलाभकी प्राप्ति शब्दप्रमाणपर आधारित है। तर्कबुद्धिसे इस सत्यका साक्षात्कार कर पाना कठिन है। अनेक दुर्बोध पारलौकिक सत्योंकी भाँति यह सत्य भी केवल श्रद्धाबुद्धिसे अनुभूत किया जा सकता है। श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणोंके अतिरिक्त वाल्मीकि, व्यास, शंकर, कालिदास-सरीखे सहस्रों धर्मधुरीण महापुरुषोंने गंगाकी कृपासे मुक्तिलाभ स्वीकार किया है। इन आप्तपुरुषोंके तपस्समाध्यात सत्यका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। अब्दुर्रहीम खानखाना-जैसा श्रद्धालु सन्त भी बड़े विश्वासके साथ गंगासे अपनी मुक्ति माँगता है—

अच्युतचरणतरंगिणि! मदनान्तकमौलिमालतीमाले!
त्वयि तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता॥

वस्तुत: भगवती गंगाकी कीर्तिकथाका विस्तार अनन्त है। गंगा भारतीय संस्कृति, धर्म एवं आध्यात्मिक आस्थाकी पर्याय हैं। जिसने गंगाको समझ लिया मानो उसने भारतीय संस्कृतिके मर्मको समझ लिया।

अपनी कुछ गीत-पंक्तियोंके साथ भगवती गंगाकी यह यशोगाथा, उन्हींके श्रीचरणोंमें अर्पित करता हूँ—

भगीरथभूरितपसा या भुवं कथमपि समानीता।
मया दृग्भ्यां निपीता सैव सन्ततिवत्सला गंगा॥
दृषदि कुल्याप्रवाहा मालभूमौ सिन्धुविस्तारा।
विलक्षणशिल्परचनामादधाना चंचला गंगा॥
गहनगिरिशृंखलोद्याने द्रुतं पक्षतिबलैर्यान्ती।
मधुरमधुरं स्वनन्ती प्रेक्षिताऽसितकोकिला गंगा॥
क्वचिन्मध्येप्रवाहं गिरिशिलाभी रुद्धजलवेगा।
किरन्ती सीकरासारं मया दृष्टाऽमला गंगा॥
धनुर्यष्टिच्छविं दधती निकामं शिखरिणां मूले।
कपर्दाद् धूर्जटेः पतितेव भुवि चान्द्री कला गंगा॥
तरंगैर्भंगुरावर्तैर्भ्रमिव्रातैर्दधन्नादा ।
सहजतौर्यत्रिके संलक्ष्यते धृतमर्दला गंगा॥
शिलाः निष्पिष्य बृहतीस्ताश्च करकाकारतां नीत्वा।
युयुत्सुश्चण्डिकेवालोकिता वर्चस्वला गंगा॥
क्वचिल्लीना क्वचित्पीना क्वचिद्दीनाऽद्रिरन्ध्रेषु।
क्वचिन्नृत्यज्जला भङ्ग्या क्वचित्प्रसरज्जला गंगा॥
सितिम्ना कम्बुकुन्देन्दूच्चयं स्तन्यञ्च लघयन्ती।
चुलुकचुलुकैर्मया पीता विमुक्त्यै शीतला गंगा॥

* सविस्तर द्रष्टव्य—(कल्याण तीर्थांक) गीताप्रेस, गोरखपुर।

भारतीय प्रतिमा-कलामें बलदेवजीका स्थान

(डॉ० श्रीभगवतीलालजी राजपुरोहित)

संकर्षण कृषकोंके देवता हैं। इनके एक हाथमें हल है, जिससे अनाज बोया जाता है और दूसरे हाथमें है मूसल, जो पके धानको कूटनेके काम आता है। तभी वह धान खाद्य बन पाता है। इन दोनों आयुधोंके माध्यमसे अन्नको बोनेसे उपभोगतककी समग्र प्रक्रिया आ जाती है।

पाञ्चरात्रके अन्तर्गत चतुर्व्यूहमें संकर्षणका विशिष्ट महत्त्व है। इसीलिये ईसवी पूर्वसे ही कृष्णके साथ बलदेवकी प्रतिमाएँ भी निर्मित होनी आरम्भ हो गयी थीं। परिणामतः प्रतिमा-लक्षणमें बलदेवकी प्रतिमाके लक्षण भी प्राचीनकालसे ही प्राप्त होते हैं। बृहत्संहितामें कहा गया है कि बलदेवकी प्रतिमाके हाथमें हल हो, उनके नयन मदघूर्णित हों, कानमें कुण्डल तथा उनका शरीर चन्द्र-सा गौरवर्ण हो। बलदेव तथा कृष्णके मध्य एकानंशाकी प्रतिमा बनायी जाय।

बलदेवो हलपाणिर्मदविभ्रमलोचनश्च कर्तव्यः।
विभ्रत्कुण्डलमेकं शङ्खेन्दुमृणालगौरवपुः॥

(बृहत्संहिता ५८। ३६)

विष्णुधर्मोत्तरमें कहा गया है कि बलदेवके हाथोंमें हल तथा मूसल हों, कानमें कुण्डल हो, वर्ण श्वेत तथा अत्यन्त नील वसनके साथ ही मदघूर्णित नयन होने चाहिये।

सीरपाणिर्बलः कार्यो मुसली चैव कुण्डली।
श्वेतोऽतिनीलवसनो मदोदञ्चितलोचनः॥

'अपराजितपृच्छा'में कहा गया है कि बलरामके हाथोंमें हल-मूसल हों। यदि चतुर्भुज मूर्ति बनायें तो बायें ऊपरके हाथमें हल तथा नीचेके हाथमें शङ्ख देना चाहिये।

गदालाङ्गलधारी च रामो वाथ चतुर्भुजः।
वामोर्ध्वे लाङ्गलं दद्यादधश्शङ्खं सुशोभनम्॥

वैखानस वैष्णवागमके अनुसार बलभद्र मध्यम दशतालके बराबर द्विभुज, त्रिनत, दायें हाथमें मूसल तथा वाममें हल, श्वेताभ, रक्तवसन, ऊपर बँधे केश तथा दायें रेवती देवी हों।

'अथ बलभद्ररामं मध्यमं दशतालमितिं द्विभुजं त्रिनतं दक्षिणहस्तेन मूसलधरं वामेन हलधरं श्वेताभं रक्तवस्त्रधरमुद्बद्धकुन्तलं दक्षिणे रेवतीं देवीम्॥'

राजा भोजके समरांगणसूत्रधारमें बलदेवका कुछ विस्तारसे विवरण दिया गया है। तदनुसार बलदेवकी मनोहर भुजाएँ हों, कान्तिमान् हों, तालकेतुके समान तेजस्वी हो, वक्षपर वनमाला हो, चन्द्रद्युतिसे सम्पन्न हो, हाथोंमें हल-मूसल हो, चतुर्भुज हो, मुख सौम्य हो, नील वसन हो, सिरपर बाल एवं मुकुट हो, रागविभूषित हो, प्रतापी हो तथा रेवतीसहित हो।

बलस्तु सुभुजः श्रीमांस्तालकेतुर्महाद्युतिः।
वनमालाकुलोरस्कः निशाकरसमप्रभः॥
गृहीतसीरमुसलः कार्यो दिव्यमदोत्कटः।
चतुर्भुजः सौम्यवक्त्रो नीलाम्बरसमावृतः॥
मुकुटालंकृतशिरोरोहो रागविभूषितः।
रेवतीसहितः कार्यो बलदेवः प्रतापवान्॥

(समराङ्गणसूत्रधार ५७। ३६—३८)

इस समग्र विवरणसे बलरामका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। तदनुसार बलराम गौरवर्णके हों, बहुधा उनके वसन नील हों। पर कभी-कभी लाल भी हो सकते हैं। सिरपर जटामुकुट भी हो सकता है और मुकुट भी। कानोंमें कुण्डल हो, प्रतापी हो तथा मुखपर सौम्यता हो।

नयन मदघूर्णित हों। वक्षपर वनमाला हो। हाथोंमें हल तथा मूसल हों। वे चतुर्भुज भी हो सकते हैं। तब शंख भी हाथमें होना चाहिये। साथमें रेवती भी हों।

इस प्रकार श्रीकृष्णके अग्रज तथा दुर्योधनके गदागुरु बलरामके स्वरूपका प्राचीन ग्रन्थोंमें विवरण दिया गया है, जिसके अनुसार ही प्राय: प्रतिमाएँ निर्मित होती रहीं। मोरागाँवके कुएँसे प्राप्त षोडाशके लेखमें पंचवृष्णियोंका उल्लेख है। तथैव मझिमका (नगरी)-के घोसुंडी वैदिका लेखके अनुसार वासुदेव तथा संकर्षणकी पूजा की जाती थी। शुंग-कुषाणयुगीन कई प्रतिमाएँ मथुरा तथा उसके आस-पाससे प्राप्त हुई हैं। जुन्सुरी (लखनऊ संग्रहालय)-की प्रतिमा शुंगकालकी है। इस प्रतिमाके सिरपर पाँच नागफण छत्र किये हैं। हलके सिरेपर सिंहलांगल भी है। बलरामको शेषका अवतार भी माना गया है। इसीलिये उनकी प्रतिमाएँ नागचिह्नांकित प्राप्त होती हैं। इस प्रतिमाके बाद तो अनन्त प्रतिमाएँ निर्मित हुई हैं। कुछमें उन्हें पानपात्र (चषक) लिये भी दर्शाया गया है।

बलरामकी प्रतिमाके लक्षण शुंगयुगमें ही तय हो गये थे। उस समयकी उनकी प्रतिमाओंके हाथोंमें हल-मूसल हैं। इनका वेश यक्ष-मूर्तियोंके समान है। सिरपर भारी पगड़ी, कानोंमें कुण्डल, उत्तरीय तथा अधोवस्त्र, जिसकी तिकोनी पट्‌टी टाँगोंके बीचमें लटकती दिखायी गयी है। सम्मुख दर्शन चपटा है। गुप्तयुगीन प्रतिमाओंमें चतुर्भुजी शरीरपर वैजयन्ती माला प्रदर्शित है। इस प्रकार बलराम-प्रतिमामें नागपूजासे फण, क्षेत्रपाल देवतासे हल, यक्षमूर्तियोंसे मुद्‌गर या गदा ली गयी है। हलके सिरेपर सिंहलांगूलका उल्लेख महाभारतमें है तथा मथुरामें कलाशकक्षहरातके समय प्राप्त होता है। मधुपानरत कुबेरके प्रभावसे बलरामके हाथमें चषक भी है। इस प्रकार कई लक्षणोंको मिलाकर बलरामकी प्रतिमाकी कल्पना की गयी है, जिसे भागवतोंने भी स्वीकार किया।

बोधकथा—

खूब विचारकर कार्य करना चाहिये

किसी वनमें खरनखर नामक एक सिंह रहता था। एक दिन उसे बड़ी भूख लगी। वह शिकारकी खोजमें दिनभर इधर-उधर दौड़ता रहा, पर दुर्भाग्यवश उस दिन उसे कुछ नहीं मिला। अन्तमें सूर्यास्तके समय उसे एक बड़ी भारी गुफा दिखायी दी। वह उसमें घुसा तो वहाँ भी कुछ नहीं मिला। तब वह सोचने लगा, अवश्य ही यह किसी जीवकी माँद है। वह रातमें यहाँ आयेगा ही, अतः यहाँ छिपकर बैठता हूँ। उसके आनेपर मेरा आहारका कार्य हो जायगा।

इसी समय उस माँदमें रहनेवाला दधिपुच्छ नामक सियार वहाँ आया। उसने जब दृष्टि डाली तो उसे पता लगा कि सिंहका चरण-चिह्न उस माँदकी ओर जाता हुआ तो दीखता है, पर उसके लौटनेके पद-चिह्न नहीं हैं। वह सोचने लगा—'अरे राम! अब तो मैं मारा गया; क्योंकि इसके भीतर सिंह है। अब मैं क्या करूँ, इस बातका सुनिश्चित पता भी कैसे लगाऊँ?'

अन्तमें कुछ देरतक सोचनेपर उसे एक उपाय सूझा। उसने बिलको पुकारना आरम्भ किया। वह कहने लगा—'ऐ बिल! ऐ बिल!' फिर थोड़ी देर रुककर बोला—'बिल! अरे, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है, हमलोगोंमें तय हुआ है कि मैं जब भी यहाँ आऊँ तब तुम्हें मुझे स्वागतपूर्वक बुलाना चाहिये। पर अब यदि तुम मुझे नहीं बुलाते हो तो मैं दूसरे बिलमें जा रहा हूँ।' इसे सुनकर सिंह सोचने लगा—'मालूम होता है कि यह गुफा इस सियारको बुलाया करती थी, पर आज मेरे डरसे इसकी बोली नहीं निकल रही है। इसलिये मैं प्रेमपूर्वक इसे बुला लूँ और जब यह आ जाय तब इसे चट कर जाऊँ।'

ऐसा सोचकर सिंहने उसे जोरसे पुकारा। अब क्या था, उसके भीषण शब्दसे वह गुफा गूँज उठी और वनके सभी जीव डर गये। चतुर सियार भी यह कहते हुए भाग चला कि मैं इस वनमें ही रहते-रहते बूढ़ा हो गया, पर मैंने आज-तक कभी बिलकी बोली नहीं सुनी। अवश्य ही दालमें कुछ काला है अर्थात् माँदमें सिंह बैठा हुआ है। [पंचतन्त्र]

संत-चरित—

भगवत्तत्त्वदर्शी सन्त श्रीश्रीशंकर चैतन्य भारती

(श्रीश्रीकृष्णजी पन्त)

भगवान् श्रीविश्वनाथजीकी नगरी काशी महापुरुषोंकी खान है। इसमें एक-से-एक महान् विद्वान्, भगवद्भक्त एवं सन्त-महात्माओंका आविर्भाव हुआ ही करता है। आज हम इन पंक्तियोंसे ऐसे ही एक महान् दार्शनिक विद्वान्, महान् सन्त एवं अत्यन्त उच्च आध्यात्मिक भूमिमें स्थित महात्माका उल्लेख करने जा रहे हैं। वे सन्त महात्मा थे श्रीश्रीशंकर चैतन्य भारती। उनका जन्म सन् १९१६ ई० में हुआ था और निवास वाराणसीमें ललिताघाट-स्थित राजराजेश्वरी-मन्दिरमें था। उनका सन् १९५८ ई० में कैलासवास हो गया।

वे वाचस्पति मिश्र-सदृश विद्वानोंके समकक्ष थे। उन्होंने अपने प्रारम्भिक जीवनमें ख्यातिवाद नामकी पुस्तक लिखी थी, जिसमें ख्याति, आख्याति, असतख्याति, प्रसिद्धार्थख्याति, आत्मख्याति इत्यादि आठ प्रकारकी ख्यातियोंका विशद विश्लेषण है। भाषा सुन्दर, प्राचीन महान् विद्वान् आचार्योंकी शैलीसे मिलती-जुलती प्रांजल है। यह सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयके सरस्वतीभवन-संस्कृत-सीरीजसे प्रकाशित हुई थी। उक्त सीरीजके कर्ताधर्ता सर्वस्व पण्डितप्रवर श्रीगोपीनाथजी कविराजजीने उसकी भाषा तथा शैलीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

कुछ वर्षोंके बाद उन्होंने वेदान्तके महान् ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्यकी टीका लिखी, जो दो भागोंमें प्रकाशित हुई। टीका प्रकाशित सम्पूर्ण टीकाओं (विद्यासागरी, शांकरी आदि प्राचीन टीकाओं)-में सर्वोत्तम है। उसकी गहराईके सम्बन्धमें प्रसिद्ध पण्डित महामहोपाध्याय श्रीहरिहरकृपालुजीने उस ग्रन्थपर अपनी सम्मति प्रदान करते हुए लिखा था—'न्यायका अच्छा विद्वान् गुरुमुखसे इसका अध्ययन करे तो इसके महान् विषयोंका अवगमन कर सकता है।'

आप गंगाजीमें प्रात:काल मूसलस्नान करते थे। बिना हाथ-पैर मले, शरीर-मर्दन किये, डुबकी लगाकर सीधे अपने स्थानपर बैठ जाते थे—एकान्तमें भगवद्भजन करनेके लिये।

नि:स्पृह ऐसे कि निकटवर्ती सागकी मण्डीमें जाते, सागपातके जो डण्ठल पड़े रहते, उन्हींसे जीवन-निर्वाह कर लेते थे।

एक समय बीमार पड़नेपर उनके एक बंगाली भक्तने तात्कालिक प्रसिद्ध डॉक्टर दास गुप्ताजीसे स्वामीजीके उदात्त जीवन, नि:स्पृहता एवं महान् विद्वत्ताका जिक्र करते हुए उन्हें (स्वामीजीको) एक बार देख लेनेका अनुरोध किया।

डॉ० दास गुप्ता स्वामीजीको देखने आये। उन्होंने स्वामीजीकी हालत देखकर पूछा—'क्या खाते हैं?' 'साग-पात बेचनेवालोंके पड़े डण्ठल।' उन्होंने फिर पूछा—'आनन्दमयी माँको जानते हैं?' 'हाँ जानता हूँ।' 'उनका कभी दर्शन किया है?' 'दर्शन तो नहीं किया। दर्शन कर सकते हैं? माताजीकी आज्ञा होगी तो।' 'क्या आपकी माताजी भी हैं?' 'हैं', भगवती राजराजेश्वरीकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा। डॉ० साहबने फिर पूछा—'क्या आप माता राजराजेश्वरीसे वार्तालाप करते हैं?' 'हाँ, आवश्यकता पड़नेपर करता हूँ।' 'क्या माता

राजराजेश्वरी आपसे बोलती हैं।' 'हाँ, बोलती हैं।'

डॉ० साहब देखकर चले गये। डॉ० साहबने श्रीआनन्दमयी माँसे कहा—'ऐसे महान् विद्वान् और सन्त इस प्रकारकी हालतमें पड़े हुए हैं।'

माता श्रीआनन्दमयीने उनके भोजन, जलपान आदिकी व्यवस्थाके लिये एक व्यक्तिको नियुक्त कर दिया, जो प्रतिदिन माता आनन्दमयी-आश्रम भदैनीसे उनके आहारकी समुचित व्यवस्था करता था।

ऐसा विद्वान्, नि:स्पृह सन्त-महात्मा जो देवी-देवताओंसे वार्तालाप करता था, इस घोर कलिकालमें शायद ही कोई और हो।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे महापुरुष संसारकी दृष्टिसे ओझल ही रहते हैं। महात्मा परमज्ञानी परमभक्त एवं परम नि:स्पृह सन्त थे। उनके भगवत्तत्त्वविषयक चिन्तनका आभास हम उनकी कृति 'ख्यातिवाद' में पा सकते हैं। इनका जीवन आदर्श यतिजीवन था।

गो-चिन्तन—

गौरा

(श्रीमती महादेवीजी वर्मा)

[***गाय कोई पशु नहीं, गोमाता हैं, परमात्माकी पोषणात्मिका शक्ति हैं। परंतु विचित्र विडम्बना है कि बहुत-से स्वार्थी मनुष्य उस परम उपकारी प्राणीके प्रति भी क्रूरभाव रखते हैं और अपने निहित स्वार्थकी पूर्तिके लिये उसकी निर्मम हत्यातक कर देते हैं। प्रस्तुत कहानीमें इसी तथ्यका प्रकटन किया गया है। ऐसे स्वार्थी तत्त्वोंसे समाज सावधान रह सके, इसी उद्देश्यसे इसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। यह कहानी हिन्दी साहित्यकी सशक्त हस्ताक्षर महीयसी महादेवी वर्माजीके जीवनका व्यक्तिगत संस्मरण है, जिसे उन्होंने अपने लेखनकी रेखाचित्र शैलीमें शब्दांकित किया है।*** —सम्पादक]

गौरा मेरी बहिनके घर पली हुई गायकी वय:सन्धितक पहुँची हुई बछिया थी। उसे इतने स्नेह और दुलारसे पाला गया था कि वह अन्य गोवत्साओंसे कुछ विशिष्ट हो गयी थी। बहिनने एक दिन कहा, तुम इतने पशु-पक्षी पाला करती हो। एक गाय क्यों नहीं पाल लेती, जिसका कुछ उपयोग हो।

वास्तवमें मेरी छोटी बहिन श्यामा अपनी लौकिक बुद्धिमें मुझसे बहुत बड़ी है और बचपनसे ही उनकी कर्मनिष्ठा और व्यवहार-कुशलताकी बहुत प्रशंसा होती रही है, विशेषत: मेरी तुलनामें। यदि वे आत्मविश्वासके साथ कुछ कहती हैं तो उनका विचार संक्रामक रोगके समान सुननेवालेको तत्काल प्रभावित करता है। आश्चर्य नहीं, उस दिन उनके उपयोगितावाद-सम्बन्धी भाषणने मुझे इतना अधिक प्रभावित किया कि तत्काल उस सुझावका कार्यान्वयन आवश्यक हो गया। वैसे खाद्यकी किसी भी समस्याके समाधानके लिये पशु-पक्षी पालना मुझे कभी नहीं रुचा, पर उस दिन मैंने ध्यानपूर्वक गौराको देखा। पुष्ट लचीले पैर, चिकनी भरी पीठ, लम्बी-सुडौल गर्दन, निकलते हुए छोटे-छोटे सींग, भीतरकी लालिमाकी झलक देते हुए कमलकी पंखुड़ियों-जैसे कान, सब साँचेमें ढला हुआ-सा था। गौराको देखते ही मेरी गाय पालनेके सम्बन्धमें दुविधा निश्चयमें बदल गयी।

गाय जब मेरे बंगलेपर पहुँची, तब मेरे परिचितों और परिचारकोंमें श्रद्धाका ज्वार-सा उमड़ आया। उसे गुलाबोंकी माला पहनायी गयी, केशर-रोलीका बड़ा-सा टीका लगाया गया, घीका दीया जलाकर आरती उतारी गयी और उसे दही-पेड़ा खिलाया गया। उसका नामकरण हुआ गौरांगिनी या गौरा। गौरा वास्तवमें बहुत प्रियदर्शनी थी। विशेषकर उसकी काली-बिल्लौरी आँखोंका तरल सौन्दर्य तो दृष्टिको बाँधकर स्थिर कर देता था। गायके नेत्रोंमें हिरणके नेत्रों-जैसा चकित विस्मय न होकर एक आत्मीय विश्वास ही रहता है। उस पशुको मनुष्यसे यातना ही नहीं निर्मम मृत्युतक प्राप्त होती है। परंतु उसकी आँखोंके विश्वासका स्थान न विस्मय ले पाता है, न आतंक। महात्मा गांधीने 'गाय करुणाकी कविता है', क्यों कहा, यह उसकी आँखें देखकर ही समझमें

आ सकता है। कुछ ही दिनोंमें वह सबसे इतनी हिलमिल गयी कि अन्य पशु-पक्षी अपनी लघुता और उसकी विशालताका अन्तर भूल गये। पक्षी उसकी पीठ और माथेपर बैठकर उसके कान तथा आँखें खुजलाने लगे। वह भी स्थिर रहकर और आँखें मूँदकर मानो उनके सम्पर्क-सुखकी अनुभूतिमें खो जाती थी। हम सबको वह आवाजसे नहीं पैरकी आहटसे भी पहचानने लगी। समयका इतना अधिक बोध उसे हो गया था कि मोटरके फाटकमें प्रवेश करते ही वह बाँ-बाँकी ध्वनिसे हमें पुकारने लगती। चाय, नाश्ता तथा भोजनके समयसे भी वह प्रतीक्षा करनेके उपरान्त रँभा-रँभाकर घर सिरपर उठा लेती थी। उसे हमसे साहचर्यजनित लगाव मानवीय स्नेहके समान ही निकटता चाहता था। निकट जानेपर वह सहलानेके लिये गर्दन बढ़ा देती, हाथ फेरनेपर मुख आश्वस्त भावसे कन्धेपर रखकर आँखें मूँद लेती। अब हर आवश्यकताके लिये उसके पास एक ही ध्वनि थी। परंतु उल्लास, दु:ख, उदासीनता आदिकी अनेक छायाएँ उसकी बड़ी और काली आँखोंमें तैरा करती थीं।

एक वर्षके उपरान्त गौरा एक पुष्ट सुन्दर वत्सकी माता बनी। वत्स अपने लाल रंगके कारण गेरूका पुतला जान पड़ता था। माथेपर पानके आकारका श्वेत तिलक और चारों पैरोंमें खुरोंके ऊपर सफेद वलय ऐसे लगते थे, मानो गेरूकी बनी वत्समूर्तिको चाँदीके आभूषणोंसे अलंकृत किया गया हो। बछड़ेका नाम रखा गया लालमणि, परंतु उसे सब लालूके सम्बोधनसे पुकारने लगे। माता-पुत्र दोनों निकट रहनेपर हिमराशि और जलते अंगारेका स्मरण कराते थे। अब हमारे घरमें मानो दुग्ध-महोत्सव आरम्भ हुआ। गौरा प्राय: बारह सेरके लगभग दूध देती थी। अत: लालमणिके लिये कई सेर छोड़ देनेपर भी इतना अधिक दूध शेष रहता था कि आस-पासके बालगोपालसे लेकर कुत्ते-बिल्लीतक सबपर मानो 'दूधो नहाओ'का आशीर्वाद फलित होने लगा। कुत्ते-बिल्लियोंने तो एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया था। दुग्ध-दोहनके समय वे सब गौराके सामने एक पंक्तिमें बैठ जाते और महादेव उनके खानेके लिये निश्चित बर्तन रख देता। किसी विशेष आयोजनपर आमन्त्रित अतिथियोंके समान वे परम शिष्टताका परिचय देते हुए प्रतीक्षा करते रहते। फिर नाप-नापकर सबके पात्रोंमें दूध डाल दिया जाता, जिसे पीनेके उपरान्त वे एक बार फिर अपने-अपने स्वरमें कृतज्ञता ज्ञापन-सा करते हुए गौराके चारों ओर उछलने-कूदने लगते। जबतक वे सब चले न जाते, गौरा प्रसन्न दृष्टिसे उन्हें देखती रहती। जिस दिन उनके आनेमें विलम्ब होता। वह रँभा-रँभाकर मानो उन्हें पुकारने लगती, पर अब दुग्ध-दोहनकी समस्या कोई स्थायी समाधान चाहती थी।

गौराके दूध देनेके पूर्व जो ग्वाला हमारे यहाँ दूध देता था। जब उसने इस कार्यके लिये अपनी नियुक्तिके विषयमें आग्रह किया, तब हमने अपनी समस्याका समाधान पा लिया। दो-तीन मासके उपरान्त गौराने दाना-चारा खाना बहुत कम कर दिया और वह उत्तरोत्तर दुर्बल और शिथिल रहने लगी। चिन्तित होकर मैंने पशु-चिकित्सकोंको बुलाकर दिखाया। वे कई दिनोंतक अनेक प्रकारके निरीक्षण, परीक्षण आदिके द्वारा रोगका निदान खोजते रहे, अन्तमें उन्होंने निर्णय दिया कि गायको सुई खिला दी गयी है, जो उसके रक्त-संचारके साथ हृदयतक पहुँच गयी है। जब सुई गायके हृदयके पार हो जायगी, तब रक्त-संचार रुकनेसे उसकी मृत्यु निश्चित है।

मुझे कष्ट और आश्चर्य दोनोंकी अनुभूति हुई। सुई खिलानेका क्या तात्पर्य हो सकता है? चारा तो हम स्वयं देखभालकर देते हैं, परंतु सम्भव है उसीमें सुई चली गयी हो, पर डॉक्टरके उत्तरसे ज्ञात हुआ कि चारेके साथ सुई गायके मुखमें ही छिदकर रह जाती है, गुड़की डलीके भीतर रखी गयी सुई ही

गलेके नीचे उतर जाती है और अन्ततः रक्त-संचारमें मिलकर हृदयमें पहुँच सकती है। अन्तमें ऐसा निर्मम सत्य उद्घाटित हुआ, जिसकी कल्पना भी मेरे लिये सम्भव नहीं थी। प्रायः कुछ ग्वाले ऐसे घरोंमें, जहाँ उनसे अधिक दूध लेते हैं, गायका आना सह नहीं पाते। अवसर मिलते ही वे गुड़में लपेटकर सुई उसे खिलाकर उसकी असमय मृत्यु निश्चित कर देते हैं। गायके मर जानेपर उन घरोंमें वे पुनः दूध देने लगते हैं। सुईकी बात ज्ञात होते ही ग्वाला एक प्रकारसे अन्तर्धान हो गया। अतः सन्देहका विश्वासमें बदल जाना स्वाभाविक था। वैसे उसकी उपस्थितिमें भी किसी कानूनी कार्यवाहीके लिये आवश्यक प्रमाण जुटाना असम्भव था।

अब गौराका मृत्युसे संघर्ष प्रारम्भ हुआ, जिसकी स्मृतिमात्रसे आज भी मन सिहर उठता है। डॉक्टरोंने कहा, 'गायको सेबका रस पिलाया जाय तो सुईपर कैल्शियम जम जाने और उसके न चुभनेकी सम्भावना है, अतः नित्य कई-कई सेर सेबका रस निकाला जाता और नलीसे गौराको पिलाया जाता। शक्तिके लिये इंजेक्शन दिये जाते। पशुओंके इंजेक्शनके लिये सूजेके समान बहुत लम्बी-मोटी सिरिंज तथा बड़ी बोतलभर दवाकी आवश्यकता होती है। अतः वह इंजेक्शन भी अपने-आपमें शल्यक्रिया-जैसा यातनामय हो जाता था, पर गौरा अत्यन्त शान्तिसे बाहर और भीतर दोनोंकी चुभन और पीड़ा सहती थी। केवल कभी-कभी उसकी सुन्दर पर उदास आँखोंके कोनोंमें पानीकी दो बूँदें झलकने लगती थीं।

अब वह उठ नहीं पाती थी, परंतु मेरे पास पहुँचते ही उसकी आँखोंमें प्रसन्नताकी छाया-सी तैरने लगती थी। पास जाकर बैठनेपर वह मेरे कन्धेपर अपना मुख रख देती थी और अपनी खुरदरी जीभसे मेरी गर्दन चाटने लगती थी। लालमणि बेचारेको तो माँकी व्याधि और आसन्न मृत्युका बोध नहीं था। उसे दूसरी गायका दूध पिलाया जाता था, जो उसे रुचता नहीं था, वह तो अपनी माँका दूध पीना और उससे खेलना चाहता था। अतः अवसर मिलते ही वह गौराके पास पहुँचकर या अपना सिर मार-मार, उसे उठाना चाहता था या खेलनेके लिये उसके चारों ओर उछल-कूदकर परिक्रमा ही देता रहता।

इतनी हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, दूध-सी उज्ज्वल पयस्विनी गाय अपने इतने सुन्दर चंचल वत्सको छोड़कर किसी भी दिन निर्जीव-निश्चेष्ट हो जायगी, यह सोचकर ही आँसू आ जाते थे। लखनऊ, कानपुर आदि नगरोंसे भी पशु-विशेषज्ञोंको बुलाया। स्थानीय पशु-चिकित्सक तो दिन में दो-तीन बार आते रहे, परंतु किसीने ऐसा उपचार नहीं बताया, जिससे आशाकी कोई किरण मिलती। निरुपाय मृत्युकी प्रतीक्षाका मर्म वह जानता है, जिसे किसी असाध्य और मरणासन्न रोगीके पास बैठना पड़ता हो। जब गौराकी सुन्दर चमकीली आँखें निष्प्रभ हो चलीं और सेबका रस भी कण्ठमें रुकने लगा, तब मैंने उसके अन्तका अनुमान लगा लिया। अब मेरी एक ही इच्छा थी कि मैं उसके अन्त समय उपस्थित रह सकूँ। दिनमें ही नहीं, रातमें भी कई-कई बार उठकर मैं उसे देखने जाती रही। अन्तमें एक दिन ब्रह्ममुहूर्तमें चार बजे जब मैं गौराको देखने गयी, तब जैसे ही उसने अपना मुख सदाकेसमान मेरे कन्धेपर रखा, वैसे ही एकदम पत्थर-जैसा भारी हो गया और मेरी बाँहपरसे सरककर धरतीपर आ रहा। कदाचित् सुईने हृदयको बेधकर बन्द कर दिया। अपने पालित जीव-जन्तुओंकेपार्थिव अवशेष मैं गंगाको समर्पित करती रही हूँ। गौरांगिनीको ले जाते समय मानो करुणाका समुद्र उमड़ आया, परंतु लालमणि इसे भी खेल समझ उछलता-कूदता रहा। यदि दीर्घ निःश्वासका शब्दोंमें अनुवाद हो सकता, तो उसकी प्रतिध्वनि कहेगी, 'आह, मेरा गोपालक देश!'

सुभाषित-त्रिवेणी

चारों वर्णोंके कर्तव्य

[Duties of the four orders of Society]

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावसे उत्पन्न गुणोंद्वारा विभक्त किये गये हैं।

The duties of the Brahmanas, the Ksatriyas and the Vaisyas, as well as of the Sudras have been assigned according to their inborn qualities, Arjuna.

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

अन्तःकरणका निग्रह करना, इन्द्रियोंका दमन करना, धर्मपालनके लिये कष्ट सहना, बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रखना, वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना—ये सब-के-सब ही ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।

Subjugation of the mind and senses, enduring hardships for the discharge of one's sacred obligations, external and internal purity, forgiving the faults of others, straightness of mind, senses and behaviour, belief in the Vedas and other scriptures, God and life after death etc., study and teaching of the Vedas and other scriptures and realization of the truth relating to God—all these constitute the natural duties of a Brahmana.

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागना, दान देना और स्वामिभाव—ये सब-के-सब ही क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।

Heroism, fearlessness, firmness, diligence and dauntlessness in battle, bestowing gifts, and lordliness—all these constitute the natural duty of a Ksatriya.

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥

खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार—ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं। तथा सब वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है।

Agriculture, rearing of cows and honest exchange of merchandise—these constitute the natural duty of a Vaisya (a member of the trading class). And service of the other classes is the natural duty even of a Sudra (a member of the labouring class).

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको तू सुन।

Keenly devoted to his own natural duty, man attains the highest perfection in the shape of God-realizaion. Hear the mode of performance whereby the man engaged in his inborn duty reaches that highest consummation.

[श्रीमद्भगवद्गीता १८।४१—४५]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिमें ३।१७ बजेतक	शनि	शतभिषा रात्रिमें २।४२ बजेतक	१३ अगस्त	**अशून्यशयनव्रत।**
तृतीया ,, १।४७ बजेतक	रवि	पू०भा० ,, १।५८ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ३३ बजेसे रात्रिमें १। ४७ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ८। ९ बजेसे, **कजरीतीज।**
चतुर्थी ,, १२।३९ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, १।३६ बजेतक	१५ ,,	**संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ४ बजे, **स्वतंत्रतादिवस, मूल** रात्रिमें १। ३६ बजेसे।
पंचमी ,, १२।१ बजेतक	मंगल	रेवती ,, १।४२ बजेतक	१६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें १। ४२ बजेसे **पंचक समाप्त** रात्रिमें १। ४२ बजे।
षष्ठी ,, ११।५२ बजेतक	बुध	अश्वनी ,, २।१८ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।५२ बजेसे, **सिंहसंक्रान्ति** रात्रिमें ९।४५ बजे, **हलषष्ठी (ललहीछठ), मूल** रात्रिमें २। १८ बजेतक।
सप्तमी ,, १२।१४ बजेतक	गुरु	भरणी ,, ३।२४ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३ बजेतक।
अष्टमी ,, १।६ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका रात्रिशेष ,, ४।५८ बजेतक	१९ ,,	**वृषराशि** दिनमें ९। ४८ बजेसे, **श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत, गोकुलाष्टमी।**
नवमी ,, २।२६ बजेतक	शनि	रोहिणी अहोरात्र	२० ,,	**उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवों का श्रीकृष्णजन्म-व्रत।**
दशमी रात्रिशेष ४।७ बजेतक	रवि	रोहिणी प्रात: ७ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।१६ बजेसे रात्रिशेष ४।७ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें ८।१० बजेसे।
एकादशी अहोरात्र	सोम	मृगशिरा दिनमें ९।२१ बजेतक	२२ ,,	× × × × ×
एकादशी प्रात: ६।६ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ११।५५ बजेतक	२३ ,,	**जया एकादशीव्रत** (सबका), **सायन कन्याराशिका सूर्य** रात्रिमें ११।१५ बजे।
द्वादशी दिनमें ८।८ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, २।३२ बजेतक	२४ ,,	**कर्कराशि** प्रात: ७।५३ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०।८ बजेतक	गुरु	पुष्य सायं ५।३ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।८ बजेसे रात्रिमें १०।५९ बजेतक, **मूल** सायं ५।३ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ११।५२ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा रात्रिमें ७।१८ बजेतक	२६ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ७। १८ बजेसे, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, १।१५ बजेतक	शनि	मघा ,, ९।९ बजेतक	२७ ,,	**कुशोत्पाटिनी अमावस्या।**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।११ बजेतक	रवि	पू०फा० रात्रिमें १०।३४ बजेतक	२८ अगस्त	**कन्याराशि** रात्रिशेष ४।४८ बजेसे।
द्वितीया ,, २।३८ बजेतक	सोम	उ० फा० ,, ११।३० बजेतक	२९ ,,	× × × × ×
तृतीया ,, २।३२ बजेतक	मंगल	हस्त ,, ११।५३ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। १४ बजेसे, **हरितालिका (तीज) व्रत।**
चतुर्थी ,, १।५८ बजेतक	बुध	चित्रा ,, ११।४८ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें १।५८ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ११।५१ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पू०फा० का सूर्य** सायं ६। २६ बजे।
पंचमी ,, १२।५४ बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ११।१७ बजेतक	१ सितम्बर	**ऋषिपंचमी।**
षष्ठी ,, ११।२७ बजेतक	शुक्र	विशाखा रात्रिमें १०।२६ बजेतक	२ ,,	**वृश्चिकराशि** सायं ४। ३९ बजेसे, **लोलार्कषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, ९।४० बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ९।१५ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** ९।४० बजेसे रात्रिमें ८। ३७ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ९। १५ बजेसे।
अष्टमी प्रात: ७।३५ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, ७।४९ बजेतक	४ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें ७। ४९ बजेसे, **महारविवार-व्रत।**
दशमी रात्रिमें २।५२ बजेतक	सोम	मूल सायं ६।१३ बजेतक	५ ,,	**मूल** सायं ६। १३ बजेतक।
एकादशी ,, १२।२४ बजेतक	मंगल	पू० षा० ,, ४।३२ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३८ बजेसे रात्रिमें १२। २४ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें १०।७ बजेसे, **पद्मा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ९।५९ बजेतक	बुध	उ०षा० दिनमें २।५३ बजेतक	७ ,,	**श्रीवामनद्वादशीव्रत।**
त्रयोदशी ,, ७।४२ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १।१८ बजेतक	८ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें १२।३६ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १२।३६ बजे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ५।३५ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, ११।५३ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** सायं ५। ३५ बजेसे रात्रिशेष ४। ३९ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा, अनन्तचतुर्दशीव्रत।**
पूर्णिमा दिनमें ३।४५ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, १०।४३ बजेतक	१० ,,	**मीनराशि** रात्रिशेष ४।७ बजेसे, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

राम सदा सेवक रुचि राखी

यदि हमारा मनोभाव शुद्ध है और हम पूर्ण रूपसे भगवान्‌के प्रति समर्पित हैं तो निश्चय ही प्रभु हमारी इच्छापूर्ति करते हैं। ऐसा अनेक साधकोंका अनुभव है। देर-सबेर कभी-न-कभी प्रभु कृपा करते ही हैं। मैं अपने लिये तो बस इतना ही कह सकती हूँ कि मैं एक बहुत ही साधारण जीव हूँ, फिर भी भगवान्‌की कृपाका अनुभव प्रतिदिन करती हूँ। उनमेंसे कुछ अनुभूतियोंका वर्णन इस प्रकार है—

(१) मेरे पास द्वादश ज्योतिर्लिंगकी एक साथ फोटो बहुत दिनसे थी। समयके अनुसार वह बहुत धुँधली एवं अस्पष्ट हो गयी। अब मुझे इसकी कमी खलने लगी। मन-ही-मन हमेशा सोचती थी कि मेरे पास एक वैसी ही फोटो होती। सावनका महीना आनेपर यह कमी और भी खटकती थी। एक सुबह परम आश्चर्य हुआ। जब प्रातः मैंने अपने घरका दरवाजा खोला तो देखा दरवाजेपर एक बड़ा-सा कैलेन्डर रखा था। खोलकर देखा तो वही मेरा मनचाहा चित्र था। द्वादश ज्योतिर्लिंग चारों ओर और बीचमें भूतभावन शंकरजीका चित्र। मैंने कैलेन्डरको कई बार उलट-पलटकर देखा कि शायद रखनेवालेने अपना नाम लिखा हो, पर कोई भी ऐसा संकेत न मिला, जिससे मैं जान सकूँ कि किसने रखा है। मेरी प्रसन्नता एवं आश्चर्यकी सीमा न थी। परम श्रद्धासे मैं भोलेनाथके आगे नतमस्तक हो गयी।

(२) श्रीसीताराम-विवाहके प्रसंगमें मेरी काफी पहले-से ही बहुत रुचि रही है। लगभग बीस वर्ष पहलेकी घटना है। वृन्दावनसे एक रासलीला-मण्डली पटना आयी हुई थी। जहाँ रासलीला होती थी, वहाँसे मेरा घर बहुत दूर था। लीला रातमें होती थी। वहाँ जानेके लिये मेरे संग न तो कोई साथी ही था और न वाहनकी सुविधा थी। मन मारके रह जाती थी। प्रभुकी प्रेरणा देखिये। एक दिन मेरे एक निकट-सम्बन्धी, जो सब तरहसे सम्पन्न और समर्थ थे। उन्होंने मुझसे कहा कि आज हमलोग लीला देखने नहीं जा रहे हैं। यदि तुम जाना चाहो तो हमारी गाड़ीसे जा सकती हो। ड्राइवर समयसे जायगा और ले आयेगा। अन्धा क्या चाहे दो आँखें! मैंने अपनी एक परिचितसे भी पूछा कि क्या वे जानेके लिये तैयार हैं? अकेले जानेमें मुझे संकोच हो रहा था। वे भी राजी हो गयीं और हमलोग लीलास्थलपर पहुँच गये। जैसे ही पंडालमें पहुँचे, माइकसे आवाज आ रही थी, 'रामजीकी बारात आ रही है। आपलोग स्वागतके लिये तैयार हो जायँ।' यह रोमांचकारी क्षण मैं कभी भूल नहीं सकती। मुझे तो पता भी नहीं कि आज कौन-सी लीला होनी है। इस सुखद अनुभवका वर्णन करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

(३) घटना वर्तमान समयके कोरोना कालकी ही है। मैं पटनामें रहती हूँ और जाड़ेमें मुंबई अपने लड़केके यहाँ चली जाती हूँ। पिछले वर्ष जो आयी तो लॉकडाउनके कारण वापस जाना नहीं हो पाया। यह समय सबके लिये बहुत ही विकट समय रहा है। मुझे प्रतिदिन सत्संगमें जानेका अभ्यास रहा है। यहाँ यह कमी बहुत खटक रही थी। घरमें मानस और भागवतजी हैं, सो उनका पारायण करनेके बाद वाल्मीकि-रामायण पढ़नेकी इच्छा हुई, पर उपलब्ध नहीं थी। यद्यपि काफी समय पहले एक बार पढ़ा था और यह ज्ञात था कि कई प्रसंग मानससे अलग हैं, पर लम्बे अन्तरालके कारण विस्मृति हो गयी थी। मोबाइलमें यूट्यूबपर देखा। कई विद्वानोंके प्रवचनपर दृष्टि गयी, पर कथामें जो व्याख्या होती है, उसमें और मूल पाठमें अन्तर होता ही है। अतः मूल पाठ सुनने या पढ़नेकी इच्छा बनी रही और प्रभुकी परम कृपा। एक दिन मोबाइलमें देखा परमपूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीके आनन्द वृन्दावन आश्रमसे वाल्मीकि रामायणके मूलपाठका प्रसारण हो रहा है।

उल्लेखनीय है कि स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी अपने समयके सर्वमान्य सन्त तो थे ही, साथ ही परम विद्वान् भी थे। वे जितने अधिकारपूर्वक अद्वैत वेदान्तकी सुबोध व्याख्या करते थे, उतने ही अधिकारसे भक्तिशास्त्रकी भी सरल व्याख्या करते थे। भगवान्‌की लीला-कथाओंके गुणानुवाद तो वे अत्यन्त कुशलतापूर्वक सुन्दर रीतिसे करते ही थे। ऐसे महात्माकी वाणीका प्रसाद पाते हुए मेरी मनोकामना पूर्ण हो रही थी, मैं इस सुखद आश्चर्यसे अभिभूत थी।—**श्रीमती महारानी राजगढ़िया**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

थकान मिटानेका उपाय

प्रख्यात उद्योगपति लक्ष्मीपति सिंहानियाने एक बार स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीसे कहा कि मैं जब ऑफिसमें काम करता हूँ तो थोड़े ही परिश्रमसे थक जाता हूँ। क्या करूँ?

स्वामी अखण्डानन्दजी भी लक्ष्मीपति सिंहानियाके आचार-व्यवहारसे प्रभावित थे। एक संस्मरणमें स्वामीजीने लिखा कि लक्ष्मीपति सिंहानियाजी अत्यन्त सज्जन, सौम्य एवं सरल व्यक्ति थे। अभिमान तो उन्हें छूतक नहीं गया था। अधिक बोलते नहीं थे। स्वर भी कभी ऊँचा नहीं होता था। जितनेमें सामनेवाला सुन ले, उतना ही बोलते थे। सदाचारमें उनकी निष्ठा थी। भगवान्‌के प्रति उनकी आस्था थी। व्यापारकी कलामें निपुण, उत्साह एवं पौरुषके पक्षपाती तो थे ही, अपने माता-पिता, बड़े भाईके प्रति श्रद्धा एवं आदरका भाव रखते थे। किसीके प्रति भी उनके मुखसे कभी निष्ठुर वचन सुननेको नहीं मिला। बड़ी कोमलताका व्यवहार करते थे।

जब लक्ष्मीपति सिंहानियाने अखण्डानन्दजीसे कहा कि मैं ऑफिसमें थोड़े ही परिश्रमसे थक जाता हूँ, तो अखण्डानन्दजीने उन्हें एक प्रक्रिया बतायी, जो उपनिषदों और महाभारतमें है। वह यह है कि बीच-बीचमें एक-दो मिनटके लिये मुँह बन्द कर लें। दाँत परस्पर सटें नहीं। जीभ, ऊपर-नीचे किसीका स्पर्श न करे। ज्यों-की-त्यों बनी रहे। एक मिनट भी ऐसा कर लें तो थकान दूर हो जायगी और मनको विश्राम मिलेगा। उन्होंने ऐसा किया और बतलाया कि इससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

असलमें बात यह है कि जब जीभ अधरमें निष्क्रिय हो जाती है तो किसी शब्दका उच्चारण नहीं होता। शब्दके उच्चारणके बिना मनकी भाग-दौड़ बन्द हो जाती है। एक मिनटके लिये भी मनकी दौड़-धूप बन्द हो जानेसे बहुत विश्राम मिलता है। यदि कदाचित् ऐसा न कर सकते हों तो नेत्र जहाँ हैं, वहीं उनको स्थिर कर दीजिये, पुतली दाँये-बायें, ऊपर-नीचे कहीं न जाय। परंतु उनपर कोई दबाव न डाला जाय। क्षणभरके लिये आपका मन सब तरहके तनावोंसे मुक्त हो जायगा और बहुत विश्राम मिलेगा। आँख बन्द हो या खुली, इसपर ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।—**प्रो० सन्तोषकुमार तिवारी**

(२)

पातिव्रत्यका प्रभाव

सन् १९२९ ई०की बात है। लक्ष्मीदेवी अपने पति एवं बच्चोंके साथ पितृगृहसे पतिके यहाँ आ रही थीं। रात्रिका समय था। मुगलसरायमें छोटे बच्चेको जल पिलाने वे उतरीं। पतिदेव सो रहे थे। सहसा गाड़ी छूट गयी, दौड़कर भी वे उसे पकड़ न सकीं। रोने लगीं। उसी समय एक स्टेशनबाबू उनको रोते देख समीप पहुँचे। सब बातें जानकर उन्होंने कहा कि 'तुम मेरे संग चलकर मेरी पत्नीके साथ विश्राम करो! तुम्हारे पतिको सबेरे तार दे दूँगा।' लक्ष्मीदेवीने विश्वास किया। वे उसके साथ चल पड़ीं।

वहाँ घरमें कोई स्त्री थी नहीं। स्टेशनबाबूने घर पहुँचते ही अपना दूषितभाव प्रकट किया। अब क्या हो, लक्ष्मीदेवी डरीं। उन्होंने बहाना किया कि मुझे शौच जाना है। वह कामान्ध उनको बाहर जाने देना नहीं चाहता था। अन्तमें कहना पड़ा—'तुम बच्चेको अपने गोदमें रखो! मैं शीघ्र आती हूँ।' किसी प्रकार बच्चेको देकर वे बाहर गयीं और दरवाजा बन्दकर बाहरसे साँकल लगा दी।

'तुम यदि द्वार न खोलोगी तो मैं बच्चेको पत्थरपर पटक दूँगा।' उस दुष्टने धमकाया।

'दरवाजा तो मैं सबेरे खोल दूँगी और बच्चेको लेकर चली जाऊँगी' लक्ष्मीदेवीने कहा। उसने भीतरसे अनेक प्रलोभन दिये, धमकाया और अन्तमें सचमुच एक चीख आयी। कामने उसे राक्षस बना दिया था। दुष्टने

बालकको पत्थरपर पटक दिया था। लक्ष्मीदेवी फूट-फूटकर रोने लगीं।

नीरव रात्रिमें एक नारीका करुण-क्रन्दन सुनकर समीपके मकानसे एक वृद्ध बाहर आये। उन्होंने सब पूछकर पुलिसको सूचित किया। पुलिस आयी और वह दुष्ट गिरफ्तार हुआ। प्रात: डॉक्टरोंने मृत शिशुकी परीक्षा करके उसे गाड़ देनेका आदेश दिया। उस देवीने बच्चेके शरीरको दोनों हाथोंमें लेकर भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! यदि धर्म-पालनका इसी प्रकार दण्ड मिलता रहा, तो कौन धर्मको मानेगा! आपपर कौन श्रद्धा करेगा? मेरे बच्चेको जीवित करो। यदि पतिके अतिरिक्त किसी पुरुषका मैंने कभी चिन्तन न किया हो तो यह शिशु सजीव हो जाय।' सबने आश्चर्यसे देखा, बच्चेमें जीवनके लक्षण प्रकट होने लगे। हृदयमें गति आयी, श्वास चली और उसने नेत्र खोल दिये। देवीके जयनादसे दिशाएँ गूँज उठीं।

—रामखेलावन वर्मा

(३)

सच्ची तीर्थयात्रा

रामनारायणजी नामके एक साधारण व्यापारी थे। राजस्थानके छोटेसे शहरमें वे एक साधारण-सी दूकान करते थे। उनकी पत्नी बड़ी श्रद्धालु तथा धार्मिक प्रवृत्तिकी थी। उसका मन बहुत दिनोंसे चारों धामोंकी यात्रा करने तथा पुण्यस्थलोंपर यथासाध्य कुछ दान करनेका था। पर पतिकी आर्थिक स्थितिको देखकर वह कभी कुछ कहती नहीं थी। एक वर्ष उनकी दूकानमें पाँच-सात सौ रुपयेकी बचत हुई, तब उसने एक दिन पतिसे अपने मनकी बात कही। पतिने प्रसन्न होकर सहानुभूतिके साथ कहा—'सब मिलाकर लगभग दो हजारका खर्च है। अगले साल कुछ और कमाई हो जायगी, तब चले चलेंगे। तुम्हारी यह इच्छा बहुत ही उत्तम है।' पत्नीने कहा—'लगभग चार सौ रुपये तो दस वर्षमें मैंने बचा-बटोरकर रखे हैं।' आखिर यह निश्चय हुआ कि 'होलीके बाद चलना है। अभी छ: महीने हैं। इस बीच विवाहोंके मौसममें दूकानमें भी कुछ आमदनी हो जायगी।' पत्नी प्रसन्न हो गयी।

आखिर फागुनतक सब मिलाकर सोलह सौ रुपये इकट्ठे हुए। चैत्र कृष्ण द्वितीयाका मुहूर्त निश्चित हो गया। रामनारायणने दूकानका काम कुछ समेट लिया; क्योंकि तीर्थयात्रामें जानेपर दूकान बन्द रखनी थी। इसी बीच एक दिन गाँवमें बाहरी बस्तीमें आग लग गयी। गरीबोंकी झोंपड़ियाँ तो जलीं ही, छोटी-सी गोशालाके घासकी वह बागर जल गयी, जो कल ही खुलनेवाली थी। गोशालाकी डेढ़ सौ गायोंके खाद्यकी भयानक समस्या आ गयी। यह समाचार रामनारायणजीकी धर्मभीरु करुणामयी पत्नीको मिला। घासके अभावमें गौओंको भूखा रहना पड़ेगा, इस विचारसे उसका हृदय दहल गया। उसने अपने पति रामनारायणजीसे कहा कि 'अपनी तीर्थयात्रा या तो इस साल स्थगित कर दीजिये अथवा चारों धामोंकी न करके दो ही धामोंकी यात्रा कीजिये और सोलह सौमें-से आधे आठ सौ रुपयेकी गायोंके लिये घास खरीद दीजिये। घासके अभावमें गायें भूखी रहेंगी।' रामनारायणजीने समझाया कि 'वर्षोंसे तुम्हारी तीर्थयात्राकी इच्छा है और बड़ी कोर-कसरसे—बड़ी कठिनाईसे ये रुपये इकट्ठे हो गये हैं। फिर जुगाड़ होना कठिन है।' पर उसकी समझमें यह बात नहीं आयी। उसने कहा—'तीर्थयात्रा ना होगी तो कोई बात नहीं। गाँवमें इस समय कोई घास खरीद दे, ऐसा आदमी दीखता नहीं है। खुली बागरकी घास समाप्त हो गयी थी। कल ही यह बागर खुलनेवाली थी। मैंने पता लगाया है कि अमुक जाटके पास एक बागर घास है, और किसीके पास नहीं। वह किसीको बेच देगा तो फिर तो घास मिलना ही कठिन हो जायगा। अतएव उस घासको खरीदकर गोशालाको दे दीजिये। तीर्थयात्रामें अपनेको जो लाभ होता, वह न होगा तो कोई बात नहीं, हमारी गोमाता तो भूखों नहीं मरेंगी।' रामनारायणजीने पत्नीकी बात मान ली, घास खरीद ली गयी। तीर्थयात्राका विचार एक बार स्थगित-सा हो गया। साढ़े आठ सौमें घास खरीदी गयी; साढ़े

सात सौ रुपये बच रहे।

इसी बीचमें एक और चीज सामने आ गयी। रामनारायणजीकी पत्नीके पीहरके दूर रिश्तेमें एक भतीजी थी। बहुत गरीब घर था। उसकी एक लड़कीका विवाह होनेवाला था। रुपयोंकी व्यवस्था नहीं हो पायी थी, पर लड़कीका पिता प्रयत्न कर रहा था। वह कलकत्तेमें नौकरी करता था, वहाँ मालिकोंसे सहायता माँगने गया था। वहाँ अकस्मात् हैजा होकर उसका देहान्त हो गया। रामनारायणजीकी पत्नीकी भतीजीपर वज्रपात हो गया। पतिकी मृत्यु हो गयी और इधर जवान लड़कीका विवाह रुकनेकी नौबत आ गयी। आगे डेढ़ साल विवाहका लग्न नहीं था। सयानी लड़की थी। यह समाचार जब रामनारायणजीकी पत्नीको मिला तो उसको बड़ी मार्मिक पीड़ा हुई। उसने सोचा, तीर्थयात्राके लिये बचे हुए साढ़े सात सौ रुपयोंमें कन्याका विवाह हो जायगा। उसने रोते हुए अपने पतिके सामने विचार प्रकट किये। रामनारायणजीका हृदय भी बड़ा कोमल था। उन्होंने पत्नीकी बातका समर्थन किया। दो महीने बाद विवाहकी तिथि थी। रामनारायणजी और उनकी पत्नी दोनों उसके घर गये, उसे आश्वासन दिया और विवाहके मुहूर्तपर दोनोंने वहाँ जाकर अपने रुपयोंसे कन्याका विवाह कर दिया।

वहाँसे लौटनेपर एक दिन रामनारायणजीकी पत्नीको स्वप्नमें भगवान् नारायणके दर्शन हुए। नारायणने कहा— 'तुम्हारी तीर्थयात्रा सफल हो गयी। तुमने गायोंकी रक्षा और विधवा अबलाकी कन्याके विवाहमें रुपये लगा दिये। इससे तीर्थयात्राका फल तो तुम्हें मिल ही गया। मेरी प्रसन्नता भी तुमपर बरस रही है। तुम दोनों पति-पत्नीका लौकिक और पारमार्थिक भविष्य सुधर गया।' उसने जगकर पतिको सपना सुनाया। पतिको भी ठीक वही सपना आया था। दोनों गद्गद हो गये।

भगवान्की कृपासे उनका कारोबार बढ़ा, बड़ी सम्पत्ति हो गयी। तीर्थयात्रा भी सम्पन्न हुई। पर उनका जीवन फिर सदाचार, भगवद्भक्ति तथा गरीबोंकी सेवारूप भगवत्पूजामें ही बीता। सच्ची तीर्थयात्रा हो गयी।

—सीताराम शर्मा

(४)

सुवास रह गयी

तब मैं विवाह होनेपर पहले-पहल ही ससुराल आयी थी। छोटी-सी बहूको घरमें इधर-उधर फिरते देखकर बड़ोंकी आँखें शीतल होतीं और मेरे आनन्दोल्लासका पार नहीं रहता। स्वर्ग मेरा घर ही था। इतना होनेपर भी नववधूके आनन्दके पीछे नये लोगोंका और नये घरका डर मुझे खूब सताता। काम करते समय सदा यह लगता—कहीं भूल तो नहीं हो गयी?

बड़ी गर्मीका दिन था। पास ही भड़-भड़ जलती हुई सिगड़ी रखी थी। गरम-गरम रोटियाँ बनाकर मैं सबको परस रही थी। पास रखी कटोरीमें घी खतम हो गया था। मैं बहुत उतावलीमें हाथ धोकर घी लेने लगी। आलमारीमेंसे घीका काँचका पात्र निकालकर जमीनपर रखने लगी तो मेरे गीले हाथोंसे वह चिकना पात्र जमीनपर गिर पड़ा।

'हाय रे!' छाती धौंकनी-सी धौंकने लगी और घी बहने लगा। पात्रके फूटनेकी आवाज सुनकर मेरी सासजी पूजाघरसे बाहर आयीं और उन्होंने वस्तुस्थितिका परिचय प्राप्त किया। पास आकर मेरी पीठपर हाथ फिराते हुए उन्होंने कहा—'बहू बेटा! घबरा मत। जा शान्तिसे बैठ, मैं सब साफ किये देती हूँ।'

सहानुभूति और प्रेमभरी वाणीने मेरे हृदयमें एक ऐसा उत्पात मचाया कि मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली, मानो मैंने बहुत बड़ा अपराध किया हो। मैं अपने कमरेमें जाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

सब सफाई हो गयी। काँच चुन लिये गये, जगह धो दी गयी और जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे घरमें सब कामकाज चलता रहा। किसीने, कभी किसी बातपर भी इस घटनाका इशारा करके मुझे नीचा दिखाने अथवा अपने महत्ता-प्रदर्शनका कोई प्रयत्न नहीं किया। घी तो बह गया, पर उसकी सुवास रह गयी।

इस बातको वर्षों बीत गये! मैं अब बहू न रहकर सास बन गयी हूँ, पर कैसी? इसे तो मेरी बहू ही बता सकती है। हाँ, अपनी सासके विषयमें मैं इतना ही कहूँगी कि भगवान् उनके जैसी सास हर बहूको दे। **—सुभद्रा मारफतिया**

मनन करने योग्य

प्राणायामके चमत्कारी परिणाम

प्राण परमात्माकी शक्तिका द्योतक है। कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद्में **'प्राणो ब्रह्म'** कहकर प्राणकी महिमा बतलायी गयी है।

जिस प्राणकी इतनी महान् शक्ति है, उसका उपयोग करनेकी प्रक्रिया प्राणायाम है। उसके तीन प्रकार हैं—(१) पूरक—नाकके छिद्रोंद्वारा श्वासको भीतर ले जाना, (२) रेचक—श्वासको बाहर निकालना और (३) कुम्भक—श्वासको भीतर या बाहर रोक लेना। पूरकसहित कुम्भक 'आभ्यन्तर' और रेचकसहित 'बाह्य' कहलाता है। प्राणायामको प्रणवकी उपासना भी माना गया है।

प्राणायामसे कठिन-से-कठिन विषयको ग्रहण करने और उसका स्मरण रखनेकी क्षमता बढ़ जाती है। स्वामी विवेकानन्दकी मेधा-शक्तिका एक विचित्र वृत्त है। जब ये जर्मनीमें भारतीय दर्शनप्रेमी प्रोफेसर पाल ड्यूसनके घर ठहरे हुए थे, वे एक कविता-पुस्तक पढ़नेमें इतने मग्न हो गये कि उन्हें भान ही नहीं हुआ कि कबसे खड़े हुए प्रोफेसर चायके लिये उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें देखते ही क्षमा माँगते हुए वे कविता सुनाने लगे, जो उन्हें अच्छी लगी थी। उन्होंने स्वामीजीसे कहा 'आप इस कविताको पहलेसे जानते होंगे।' स्वामीजीने जवाबमें कहा कि 'मैंने तो इसे आपके यहाँ ही पढ़ा है।' चकित होकर वे बोले कि 'केवल एक बार ही पढ़नेसे इतनी लम्बी कविता कैसे कण्ठस्थ हो गयी?' स्वामीजीने कहा कि 'ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे और प्राणायामके अभ्याससे चित्तकी एकाग्रता प्राप्त होनेपर यह क्षमता आ जाती है।'

भगवान् आदिशंकराचार्यकी स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल थी कि वे एक बार जो पुस्तक पढ़ या सुन लेते, वह उन्हें ज्यों-की-त्यों याद बनी रहती। उनके शिष्य पद्मपादका वेदान्त-भाष्य मामाके घरमें आग लगनेपर भस्म हो गया था। जब शिष्यने उनके समक्ष इस घटनाके कारण अनुताप प्रकट किया तो उन्होंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'वत्स! चिन्ता न करो, तुमने मुझे वह भाष्य एक बार सुनाया था, अतः मुझे यह सारा-का-सारा याद है।' तदनन्तर शंकर बोलते गये और वह लिखता गया और वह भाष्य पूर्ववत् पूर्णरूपमें तैयार हो गया। यह प्राणायामका प्रताप था और शंकर महान् योगी थे। महर्षि पतंजलिने योगदर्शन (२।५३) में कहा है **'धारणासु च योग्यता मनसः।'** अर्थात् 'प्राणायामसे मनमें विषयको धारण करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है।'

एक बार बीकानेरमें प्रो० राममूर्ति पधारे। वे शारीरिक बलके प्रदर्शनोंके लिये परम प्रसिद्ध थे। मोटरकी गतिको रोक देना, लोहेकी भारी साँकलको तोड़ डालना, छातीपर विशाल शिला रखकर हथौड़ोंसे तुड़वाना, अपनी छातीपर पैर रखते हुए हाथीको निकलवा देना इत्यादि उनके बायें हाथके खेल थे। ये प्रदर्शन उन्होंने उस सरकारी विद्यालयमें किये, जो आजकल 'सादूल पब्लिक स्कूल' कहलाता है और मैं उस समय वहाँ प्रधानाचार्य था। उन्होंने अपने भाषणमें कहा—'ब्रह्मचर्यका पालन और नित्य प्राणायाम करके मैंने यह बल प्राप्त किया है। भारतीय संस्कृतिके इन सबल साधनोंद्वारा प्रत्येक पुरुष यह शक्ति प्राप्त कर सकता है।' उन्होंने मुझे बतलाया कि आभ्यन्तर कुम्भकद्वारा यह कार्य किस प्रकार किया जाता है।

उनके इस कथनका मुझपर बड़ा असर हुआ और मैंने प्रयोगके लिये 'मोहता मूलचन्द विद्यालय' के एक उपयुक्त छात्रको चुना। मैं उस विद्यालयका संचालन अवैतनिक मन्त्रीके नाते करता था। प्राणायामके सतत अभ्याससे उस छात्रका शरीर इतना सुदृढ़ और सबल हो गया कि विद्यालयके वार्षिक उत्सवमें लोहेकी भारी जंजीर तोड़कर और छातीपर शिला तुड़वाकर उसने दर्शकोंको विस्मय-विमुग्ध कर दिया।—**श्रीयुगलसिंहजी खीची**

गीताप्रेस-शताब्दीवर्ष-समारोहका भव्य शुभारम्भ

गीताप्रेसकी स्थापना १९२३ ई०में सनातन धर्मशास्त्रोंके प्रचार-प्रसारके माध्यमसे भारतीय-संस्कृति एवं संस्कारोंकी रक्षाके निमित्त की गयी थी। भगवत्कृपासे यह संस्था अपनी ९९ वर्षकी सफल यात्राके अनन्तर अपने १००वें वर्षमें प्रवेश करते हुए सतत गतिशील है। इसी उपलक्ष्यमें भारतके राष्ट्रपति महामहिम श्रीरामनाथजी कोविन्दद्वारा विगत ४ जूनको अपराह्न-कालमें गीताप्रेसके गोरखपुरस्थित मुख्य परिसरमें आयोजित गीताप्रेस शताब्दीवर्ष समारोहका औपचारिक उद्घाटन किया गया। इस अवसरपर राष्ट्रपति महोदयके साथ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सविताजी कोविन्द, उत्तरप्रदेशकी राज्यपाल महामहिम श्रीमती आनन्दीबेनजी पटेल एवं उत्तरप्रदेशके माननीय मुख्यमन्त्री योगी श्रीआदित्यनाथजीकी गरिमामयी उपस्थिति भी कार्यक्रमको शोभायमान कर रही थी।

राष्ट्रपति महोदयने सर्वप्रथम गीताप्रेसके कलात्मक भव्य द्वारका अवलोकन किया, तत्पश्चात् उन्होंने गीताप्रेस लीलाचित्र-मन्दिरमें सनातन शास्त्रोंके आधारपर बने सुन्दर कलात्मक चित्रोंको अत्यन्त मनोयोगसे देखा। वे यह जानकर भावुक हो गये कि गीताप्रेसके भव्य द्वार एवं लीलाचित्र-मन्दिरका उद्घाटन आजसे ६७ वर्ष पूर्व भारतके प्रथम राष्ट्रपति स्वनामधन्य महामहिम डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीके करकमलोंसे हुआ था और आज भारतके चौदहवें राष्ट्रपतिके रूपमें उन्हें यहाँ आनेका अवसर मिला है। राष्ट्रपति महोदयने स्वर्णाक्षरोंमें लिखित भगवद्गीतासहित दुर्लभ पाण्डुलिपियोंका भी अत्यन्त रुचिके साथ अवलोकन किया। इसके बाद गीताप्रेस ट्रस्टबोर्डके सदस्यों एवं पदाधिकारियोंके साथ राष्ट्रपति महोदयका फोटो सेशन आयोजित हुआ। तत्पश्चात् राष्ट्रपति महोदय एवं सभी विशिष्ट अतिथिगण मंचासीन हुए और राष्ट्रगानके साथ मुख्य कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

सर्वप्रथम उत्तरप्रदेशके मुख्यमन्त्री एवं श्रीगोरक्ष-पीठाधीश्वर योगी श्रीआदित्यनाथजीने अपने ओजस्वी भाषणमें आशा एवं विश्वासके साथ कहा कि पच्चीस वर्ष बाद जब राष्ट्र अपनी आजादीकी १००वीं वर्षगाँठ मनायेगा, तब गीताप्रेस निश्चय ही अपनी १२५वीं वर्षगाँठ आयोजित करेगा।

इसके बाद उत्तरप्रदेशकी राज्यपाल महामहिम श्रीमती आनन्दीबेनजी पटेलने अपने गम्भीर उद्बोधनमें गीताप्रेसकी विकास-यात्रापर सारगर्भित रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए शुभकामनाएँ व्यक्त कीं।

राष्ट्रपति महोदयने अपने सम्बोधनमें गीताप्रेसके प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए इसके प्रयासोंकी अत्यन्त सराहना की। उन्होंने कहा कि किसी भी महान् कार्यके पीछे दैवीय शक्ति अवश्य होती है, चाहे रामचरित हो या कुरुक्षेत्रका महाभारत, हनुमान्जीके बिना कुछ नहीं हो सका। इसी प्रकार गीताप्रेसको आगे ले जानेमें भी भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी अमिट भूमिका रही। राष्ट्रपति महोदयने सुझाव दिया कि कई देशोंमें गीताप्रेसके प्रकाशन अत्यन्त लोकप्रिय हैं। मैं चाहता हूँ कि गीताप्रेसकी शाखाएँ उन सभी देशोंमें स्थापित की जायँ; क्योंकि हमारा साहित्य हमारे संस्कारों, विचारों और परम्पराओंको आगे बढ़ानेका बहुत बड़ा स्रोत है। इस कार्यके लिये उन्होंने राष्ट्रपति कार्यालय, विभिन्न दूतावासों और विभागोंसे हर प्रकारकी सहायताका आश्वासन भी दिया।

पूरे प्रवासकालमें राष्ट्रपति महोदयका गीताप्रेसके संस्थापक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका, कल्याणके आदिसम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं यहाँसे प्रकाशित साहित्यके प्रति विशेष श्रद्धाभाव परिलक्षित हो रहा था। उन्होंने बताया कि वे 'कल्याण' पत्रिकाके नियमित पाठक हैं तथा इसमें प्रकाशित होनेवाले नवीन प्रकाशनोंकी सूचनापर भी सतत दृष्टि रखते हैं।

इस अवसरपर माननीय मुख्यमन्त्रीजीके द्वारा गीताप्रेस शताब्दीवर्षके उपलक्ष्यमें विशेषरूपसे प्रकाशित आर्टपेपरपर छपी चित्रबहुल श्रीरामचरितमानसकी विशिष्ट प्रति एवं गीतातत्त्वविवेचनीके नवीन विशिष्ट संस्करणका भी विमोचन किया गया तथा इनकी एक-एक प्रति महामहिम राष्ट्रपति महोदय एवं महामहिम राज्यपाल महोदयाको सादर भेंट की गयी। तदुपरान्त राष्ट्रगानके साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रममें नगरके अनेकानेक गणमान्य अतिथि, विभिन्न उच्चाधिकारी, गीताप्रेसके ट्रस्टीगण, पदाधिकारी एवं कर्मचारी, विद्वान् एवं सनातनधर्मप्रेमी अतिथिगण उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए। भगवत्कृपासे यह ऐतिहासिक कार्यक्रम अत्यन्त उत्साहपूर्ण एवं शान्त वातावरणमें आनन्दके साथ सम्पन्न हुआ।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[11 सितम्बर रविवारसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹७० (गुजराती, तेलुगु एवं नेपाली भाषामें भी उपलब्ध)।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹200

जीवच्छ्राद्धपद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹80

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹40

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹50

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹20

सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेव-विधि (कोड 210) पुस्तकाकार—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹10 [तेलुगुमें भी उपलब्ध]।

पंचांग-पूजन-पद्धति [कुशकण्डिका-होमविधिसहित] (कोड 2228)—प्रस्तुत पुस्तकमें पंचांग-पूजन कर्मके अन्तर्गत मुख्यरूपसे कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, रक्षाविधान, नवग्रहपूजन तथा नान्दीमुख श्राद्ध—इन पाँच प्रधान कर्मोंका विवेचन किया गया है। इसमें मन्त्रभाग संस्कृतमें हैं और निर्देश हिन्दीमें हैं। इसमें वैदिक मन्त्रोंके साथ-साथ पौराणिक मन्त्र भी दिये गये हैं। इस पुस्तकमें परिशिष्टके अन्तर्गत सुविधाकी दृष्टिसे कुशकण्डिकासहित होमविधि इत्यादि विषयोंका भी समावेश किया गया है। मूल्य ₹20

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी-जयन्तीके अवसरपर पठनीय—तुलसी-साहित्य

[श्रीतुलसी-जयन्ती 4 अगस्त गुरुवारको है]

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
105	विनय-पत्रिका—भावार्थसहित	60	108	कवितावली—भावार्थसहित	25	112	हनुमानबाहुक—भावार्थसहित	5
1701	विनय-पत्रिका, सजिल्द ,,	80	109	रामाज्ञाप्रश्न— ,,	15	113	पार्वती-मंगल— ,,	6
106	गीतावली— ,,	60	110	श्रीकृष्ण-गीतावली—,,	10	114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण— ,,	5
107	दोहावली— ,,	25	111	जानकी-मंगल— ,,	10			

प्र० ति० 20-06-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

शताब्दी-वर्ष-समारोहके अवसरपर प्रकाशित विशिष्ट ग्रन्थ

गीताप्रेसने अपने आध्यात्मिक सत्साहित्यके प्रकाशनकी सौ वर्षकी यात्रा पूरी करनेके उपलक्ष्यमें 4 जून 2022 को शताब्दी-वर्ष-समारोहका आयोजन बड़े हर्षोल्लासके साथ किया। इस समारोहमें पधारे भारतके राष्ट्रपति महामहिम श्रीरामनाथ कोविंद, उत्तरप्रदेशके राज्यपाल महामहिम आनन्दीबेन पटेलकी गरिमामयी उपस्थितिमें उत्तरप्रदेशके यशस्वी मुख्यमंत्री श्रीयोगी आदित्यनाथजीने 'गीता-तत्त्वविवेचनी (हिन्दी टीका, पदच्छेद, अन्वयसहित) एवं 'चित्रमय श्रीरामचरितमानस'—इन दो ग्रन्थोंका विमोचन किया साथ ही इन दोनों ग्रन्थोंकी एक-एक प्रति माननीय राष्ट्रपति महोदय तथा माननीया राज्यपाल महोदयाको सादर भेंट भी किया।

दोनों ग्रंथ मांगलिक कार्यक्रमोंमें उपहारस्वरूप देनेके लिये उपयोगी हैं।

मूल्य ₹250, डाकखर्च ₹ 70
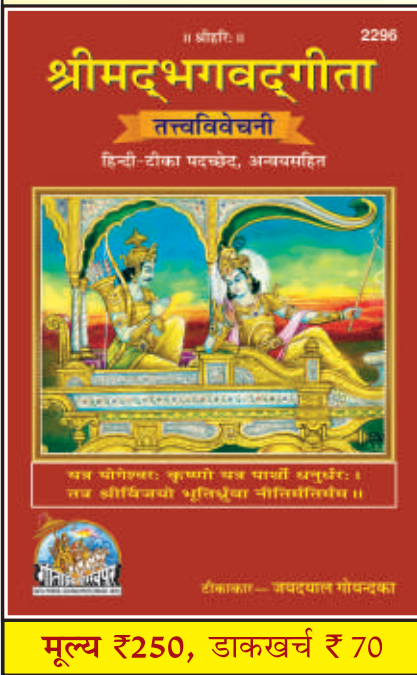
श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी—हिन्दी-टीका, पदच्छेद, अन्वयसहित, ग्रन्थाकार (कोड 2296)—प्रस्तुत पुस्तकमें गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत **'गीता-तत्त्वविवेचनी (कोड 2)**-में पाठकोंकी विशेष माँगपर अलगसे प्रकाशित **'श्रीमद्भगवद्गीता—पदच्छेद, अन्वय (कोड 17)**-के पदच्छेद और अन्वयको यथास्थान समायोजित करके प्रकाशित किया गया है। इससे पाठकोंको प्रत्येक श्लोकके प्रत्येक शब्दका अर्थ समझनेमें आसानी होगी। **मूल्य ₹250**

मूल्य ₹ 1600, डाकखर्च फ्री
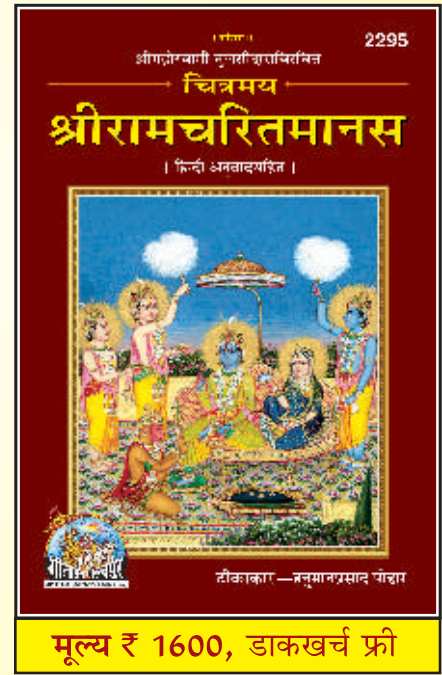
चित्रमय श्रीरामचरितमानस (कोड 2295) [ग्रन्थाकार, सटीक] चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता **(कोड 2267)** की लोकप्रियताको देखते हुए भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर पहली बार प्रकाशित हुआ है। मूल्य ₹1600

खुल गया है—बंगालके संतरागाछी रेलवे स्टेशनके प्लेटफार्म नं० 1 पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक स्टॉल, मोबाइल नं. 7503167812

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in
If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)